संपादन:
राजेश खिंदरी
माधव केलकर
रश्मि पालीवाल
सी. एन. सुब्रह्मण्यम
हृदयकांत दीवान
दीपक वर्मा

वितरण:
महेश बसेड़िया

सहयोग:
गजेन्द्र सिंह राठौर
रामभरोस यादव
अनिल पटेल
बृजेश सिंह

शैक्षिक

संदर्भ

शिक्षा की द्वैमासिक पत्रिका
अंक-38, जून-जुलाई 2001

संपादन एवं वितरण:
एकलव्य, कोठी बाज़ार
होशंगाबाद – 461 001
फोन: 07574 – 53518
ई-मेल: eklavyamp@vsnl. com
eklavyah@yahoo.com

वार्षिक सदस्यता (6 अंक) : 75 रुपए
(ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं)

मुखपृष्ठ: एक कल्पना चित्र। ब्लैक होल व आस-पास का आकाशीय परिदृश्य। यहां बीच में स्थित ब्लैक-होल लेंस जैसा प्रभाव उत्पन्न कर रही है जिसकी वजह से प्रकाश किरणें मुड़ रही हैं। प्रकाश किरणों के पथ में परिवर्तन की वजह से ऐसा लग रहा है मानो ब्लैक होल के आस-पास आकाशीय पिंडों की सघनता ज़्यादा है और वे अधिक चमक रहे हैं। प्रत्येक तारे के बहुत सारे प्रतिबिंब बनने के कारण ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे आकाश में हल्की-सी चमक आ गई हो। ब्रह्मांड को समझने की कोशिश करता हुआ विस्तृत लेख पृष्ठ 51 पर।

पिछला कवर: वोल्टा अपने कुछ उपकरणों के साथ। इस पेंटिंग में वोल्टा अपने दो आविष्कारों के साथ दिख रहे हैं – बेटरी बनाने के लिए पाइल व इलेक्ट्रोफोरेसिस यंत्र। इस पेंटिंग को बनाने वाले का नाम और पेंटिंग बनाने के साल के बारे में जानकारी नहीं है परन्तु अंदाज़ लगाया गया है कि यह लगभग सन् 1820 के करीब बनाई गई होगी। वोल्टा का देहांत सन् 1827 में 82 वर्ष की उम्र में हुआ था। सेल बनाने की विधि पर लेख पृष्ठ 37 पर।

इस अंक में निम्न किताबों से चित्र लिए गए हैं: ***आइंस्टीन्स मिरर:** टोनी हे एंड पेट्रिक वॉल्टरर्स; प्रकाशक: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस। **द लाइफ ऑफ इंडियन प्लांट्स:** आइ. फ्लेइडीरेर; प्रकाशक: एटलांटिक पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रिब्यूटर्स। **मेमल्स ऑफ इंडिया:** प्रकाशक: सेंटर फॉर एन्वायरनमेंट एज्यूकेशन, अहमदाबाद। **एनसाइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन नेचुरल हिस्ट्री:** आर. इ. हॉकिंस; प्रकाशक: बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटी। **द यूनिवर्स एक्सप्लेन्ड:** कोलिन रोनान; प्रकाशक: थेम्स एंड हडसन। **साइंटिफिक अमेरिकन पत्रिका।***

मानव संसाधन विकास मंत्रालय की एक परियोजना के तहत प्रकाशित
संदर्भ में छपे लेखों में व्यक्त मतों से मानव संसाधन विकास मंत्रालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

सदस्यता शुल्क

बढ़ गया है

संदर्भ का सदस्यता शुल्क पिछले अंक से बढ़ गया है।

नया शुल्क इस तरह है

एक प्रति का मूल्य 15 रुपए।

सदस्यता शुल्क	वार्षिक	द्विवार्षिक	त्रैवार्षिक
व्यक्तिगत/स्कूल	75 रुपए	140 रुपए	200 रुपए
अन्य संस्थाएं	150 रुपए	280 रुपए	350 रुपए

सदस्यता शुल्क बैंक ड्राफ्ट [illegible] से भी भेजा ज[illegible] ड्रॉफ्ट एकलव्य [illegible]ए।

संपर्क करें:

एकलव्य
कोठी बाज़ार, होशंगाबाद
म. प्र. पिनः 461001
ई-मेलः eklavyah@yahoo.com

खारे पानी में खेती 7

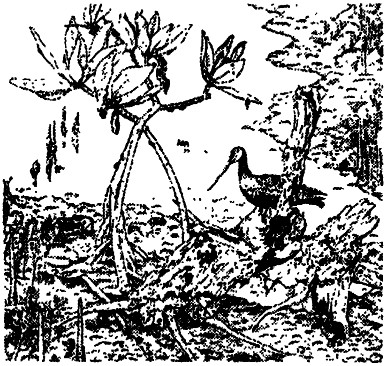

समुद्र में पानी भरपूर है लेकिन यह पानी पेड़-पौधों, फसलों की सिंचाई के लिए अनुपयुक्त है। भारत में समुद्र तटीय इलाकों में, डेल्टा प्रदेशों में पनपने वाली मेन्ग्रोव वनस्पति साल भर हरी-भरी रहती है! ऐसा किस तरह संभव हो पाता है? मेन्ग्रोव में ऐसा क्या खास है जिससे वे इस खारेपन से निपट लेते हैं? क्या अन्य वनस्पतियों को भी खारे पानी की सिंचाई के बावजूद हरा-भरा बनाए रखा जा सकता है?

महाराष्ट्र के तटीय इलाकों में किए गए प्रयोगों से यह समझ बन रही है कि खारे पानी की सिंचाई के बावजूद नीम, पीलू, खेजड़ी, झाऊ, ग्वारफाटा, नीलगिरी, नारियल, ताड़ आदि को आसानी से उगाया जा सकता है।

हम गाय की जात 17

पवित्रता, धार्मिक प्रतीकों से लैस गाय भारतीय संस्कृति में एक खास पायदान पर है। हमारी सामाजिक व्यवस्था में गाय और औरत को एक जैसा दर्जा दिया गया है। एक कहावत भी है – गोशाला में गैया और घर में मैया। औरतों से यह अपेक्षा होती है कि वह गाय की तरह सीधी, ममतामयी और सहनशील बनी रहे। सदियों से ढर्रे पर चल रही इस व्यवस्था में कभी-कभार परिवर्तन की आवाज़ सुनाई देती है।

कनाडा में कॉलेज के लड़के-लड़कियों को हिन्दी पढ़ाते हुए, विद्यार्थियों के निबंधों में लेखिका ने कहीं-कहीं एक ऐसी ही परिवर्तन की बयार को महसूस किया है।

विद्युत रासायनिक सेल . . . 37

बिजली बनाने के कई तरीकों के बारे में हम जानते हैं जैसे ताप बिजलीघर, पन बिजली, यांत्रिक विधियों से बिजली बनाना ...... इत्यादि। लेकिन पहली बार जब बिजली बनाई गई तो उसे विद्युत रासायनिक सेल से बनाया गया था। यदि आप खुद एक सेल बनाना चाह रहे हों तो नींबू के रस से सेल बना सकते हैं। और उससे एल.ई.डी. भी जला सकते हैं।

रेबीज़ 58

6 जुलाई 1885, पागल कुत्ते द्वारा बुरी तरह काटे गए जोसफ मीस्टर को लुई पास्चर की प्रयोग शाला में लाया गया और जोसफ का नाम चिकित्सा जगत के इतिहास में दर्ज़ हो गया। पहली बार किसी इंसान को रेबीज़ के खिलाफ टीका दिया गया था।
इस टीके को तैयार करने, अपने अवलोकन के बारे में लुई पास्चर ने विस्तार से एक लेख प्रकाशित किया था। रेबीज़ के बारे में पास्चर की कलम से लिखा पढ़िए।

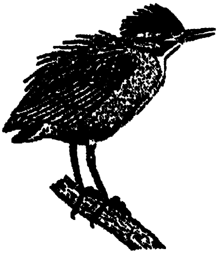

शैक्षिक संदर्भ

अंक 38 जून–जुलाई 2001

इस अंक में

आपने लिखा 6

खारे पानी में खेती 7
कर्वे एवं झेंडे

हम हैं गाय की जात 17
विद्युल्लेखा अकलुजकर

हृदय कैसे काम करता है 33
जे. बी. एस. हाल्डेन

विद्युत रासायनिक सेल 37
अम्लान दास

अपने हाथ विज्ञान 42

ज़रा सिर तो खुजलाइए 50

गुरुत्व की बारीक बातें 51
नरेश दधीच

रेबीज़ 58
लुई पास्चर

यानुस कोर-चौक 67
ब्रूनो बेटलहाइम

ज्योतिषी का नसीब 83
आर. के. नारायण

भालू भी, खीरा भी 91
किशोर पंवार

संदर्भ से नाता जोड़िए

आजीवन सदस्यता

संदर्भ से बने रिश्ते को और स्थायित्व देने का एक सुनहरा मौका है – संदर्भ के आजीवन सदस्य बनकर।

* संदर्भ की आजीवन सदस्यता राशि 1000 रुपए (व्यक्तिगत), 2000 रुपए (संस्थागत) है। **अगली उपहार योजना** का लाभ लेने के लिए आपको यह राशि 15 अगस्त, 2001 से पहले भेजनी होगी।
* यह राशि आप एकलव्य के नाम बैंक ड्राफ्ट बनवाकर या चैक से भेज सकते हैं।
* आपकी राशि हमारे पास बतौर धरोहर जमा रहेगी। जब तक संदर्भ पत्रिका का प्रकाशन जारी रहेगा, संदर्भ पत्रिका आपको नियमित रूप से मिलती [illegible]

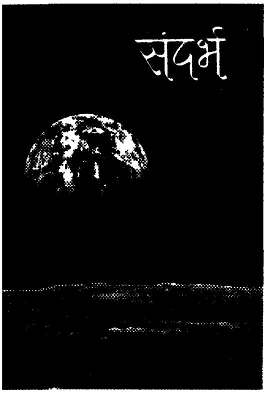

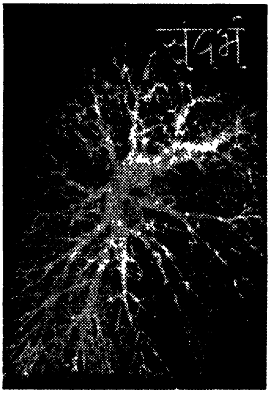

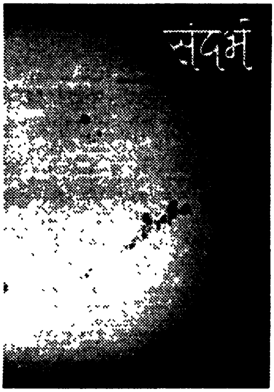

* संदर्भ का प्रकाशन अगले दस वर्ष में किसी भी कारण बंद होने की स्थिति में आपको बकाया राशि वापस लौटा दी जाएगी।

* यदि आजीवन सदस्यता लेने के बाद कभी भी आपको ऐसा लगता है कि संदर्भ आपके लिए पहले की तरह उपयोगी नहीं रही है तो आप बकाया राशि तीन साल के बाद कभी भी वापस ले सकते हैं।

आपके लिए उपहार:

यदि आप **15 अगस्त, 2001** से पहले आजीवन सदस्यता लेते हैं तो संदर्भ के आपकी पसंद के **3 सजिल्द संस्करण** बतौर उपहार भेजे जाएंगे। यानी आपके पास होंगे संदर्भ के पूर्व प्रकाशित अंक भी। **यह उपहार योजना केवल 15 अगस्त 2001 तक के लिए है।**

* और अधिक जानकारी के लिए इस पते पर संपर्क कीजिए।

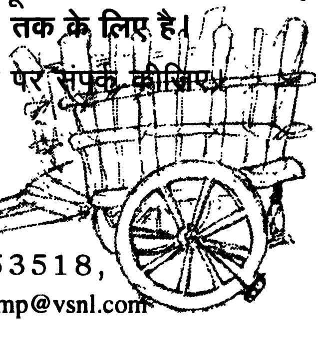

एकलव्य
कोठी बाज़ार, होशंगाबाद म. प्र.
पिन: 461001, फोन: 07574 - 53518,
ई. मेल: eklavyah@yahoo.com या eklavyamp@vsnl.com

आपने लिखा

अंक 37 पढ़ा। खासकर कमला सोहनी की जीवनी। लेख पढ़ने के बाद कमला सोहनी ने बाद में अपने वैज्ञानिक कैरियर में क्या किया, यह जानने की इच्छा हुई। किन्तु लेख के अंत में कमला सोहनी के बारे में कोई जानकारी नहीं दी गई थी। कृपया कमला जी के बारे थोड़ी जानकारी दीजिए।

इसी तरह 'घड़ी जिसने देशांतर रेखा का इनाम जीता' पढ़ा। पेज 64 पर दिया गया बॉक्स 'देशांतर व स्थानीय समय' समझने में तो आसान है लेकिन लेखक 'भारत-हिन्दुस्तान' के बीच कहीं झूल रहे थे। कभी वे भारत कहते, कभी हिन्दुस्तान।

'अंधा सांप' काफी जानकारियों से भरा लेख है। इस लेख में पेज 95 पर कहा गया है कि अंधे सांप की अधिकतम लंबाई 17 सेंटीमीटर होती है। उसी पेज पर हथेली में लिपटा सांप 44 सेंटीमीटर लंबा बताया गया है। स्थिति स्पष्ट कीजिए।

एस. एस. यदुवंशी
होशंगाबाद म. प्र.

कमला सोहनी ने बेंगलोर में अपना रिसर्च पूरा करने के बाद इंग्लैंड में रहते हुए वनस्पति कोशिकाओं में साइटोक्रोम-सी से संबंधित शोधकार्य करके पी एच. डी. प्राप्त की। बाद में भारत आकर न्यूट्रिशन रिसर्च लैब, कुन्नूर; इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस, बम्बई आदि में भोजन और पोषक पदार्थों से संबंधित विविध काम किए। काफी साल बम्बई में उपभोक्ताओं को उनके अधिकारों संबंधी मार्गदर्शन भी किया। उनके कामों के लिए उन्हें कई सम्मान भी मिले हैं।

अंधे सांप के बारे में यह आम मान्यता है कि ये कम लंबाई वाले होते हैं। लेकिन संदर्भ में जिस चोंचदार अंधे सांप का चित्र प्रकाशित किया गया है उसकी लंबाई वाकई 44 सेंटीमीटर ही है।

— संपादक

संदर्भ के संपादक मंडल को मैं सुझाव देना चाहूंगा कि आप संदर्भ में अंधविश्वासों को दूर करने के लिए विविध घटनाओं और उनके पीछे निहित विज्ञान की जानकारी देना शुरू करें, क्योंकि हमारे समाज का एक तबका विज्ञान के खेल दिखाकर लोगों को ठग रहा है। सच्चाई यह है कि जिसे भी इन खेलों के पीछे छिपे निहित विज्ञान की जानकारी होगी, वह इन्हें खुद कर सकता है।

संदर्भ के पाठकों को यदि ऐसे चमत्कारपूर्ण खेलों के विज्ञान की जानकारी हो तो वे उन्हें और लोगों को समझाएं ताकि लोग ठगी से बच सकें।

राजकुमार बसल
भदरा, राजस्थान

खारे पानी में खेती

ए. डी. कर्वे एवं एन. जे. झेंडे

आसपास की घटनाओं का सूक्ष्म अवलोकन करना और इन अवलोकनों का सैद्धान्तिक जानकारी के साथ तालमेल बिठाना, व्यावहारिक विज्ञान के ये दो मुख्य घटक हैं। इस प्रक्रिया से ही नए आविष्कार जन्म लेते हैं और नए तंत्र विकसित होते हैं।

समुद्र यानी पानी का अथाह भण्डार, परन्तु सभी जानते हैं कि पेड़-पौधों व फसलों की सिंचाई के लिए यह पानी सर्वथा अनुपयुक्त होता है। जिस पौधे को समुद्र के पानी से सींचा जाए, वह पौधा कुछ ही समय में मुरझा जाता है। आखिर, ऐसा क्यों होता है?

आपने शक्कर को पानी में घुलते हुए देखा है। मिश्रण को हिलाने से

घुलने की क्रिया तेज़ होती है। लेकिन मिश्रण को स्थिर रखने पर भी कुछ समय पश्चात शक्कर और पानी का समांगी घोल (Homogeneous solution) प्राप्त होता है। यहां शक्कर एक विलेय पदार्थ (Solute) है और पानी विलायक (Solvent) है। घुलने की प्रक्रिया विसरण के सिद्धांत (Diffusion) पर निर्भर है। इस सिद्धांत के अनुसार विलयन में, विलेय के अणु अधिक सान्द्रता वाले स्थान से कम सान्द्रता वाले स्थान की ओर गति करते हैं। इसी प्रकार विलायक के अणु भी अधिक सान्द्रता से कम सान्द्रता की ओर बढ़ते हैं। कालान्तर में विलेय और विलायक के अणु एक समांगी मिश्रण बना लेते हैं, जिसे विलयन कहते हैं।

वनस्पति और प्राणियों की जीवित कोशिकाओं में जल के अतिरिक्त कई प्रकार के विलेय पदार्थ जैसे शर्करा, प्रोटीन, कार्बनिक अम्ल आदि उपस्थित रहते हैं। जीवित कोशिका को पानी में डालने पर वह फूलती जाती है और एक निश्चित आकार ग्रहण करती है। खीर में डाले गए किशमिश के दानों को आपने देखा होगा। किशमिश स्वाद

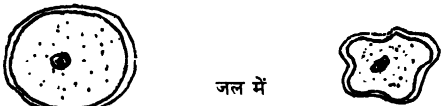

जल में

नमक के घोल में

जीवित कोशिका

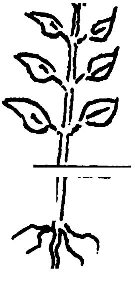

जल से सींचने पर

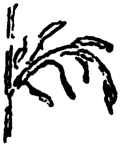

नमक के घोल से सींचने पर

में मीठी होती है क्योंकि इसमें शर्करा के अणु उपस्थित रहते हैं। दो-चार किशमिश के दानों को कुछ समय के लिए पानी में डाल दीजिए, दाने फूल जाते हैं। इससे मालूम पड़ता है कि बाहरी माध्यम से पानी के अणु किशमिश के अन्दर प्रवेश कर गए हैं। परन्तु क्या इसी तरह किशमिश के अंदर की मिठास भी बाहर के पानी में आ गई है। इसे जांचने के लिए यदि आप पानी को चखेंगे तो मीठा नहीं लगेगा। इससे पता चलता है कि किशमिश के अन्दर से शर्करा के अणु बाहर नहीं आ पा रहे हैं। इसका क्या कारण है?

यों होता है ऐसा

इसका कारण जीवित कोशिका की ऊपरी झिल्ली का अर्धपारगम्य (Semi-permeable) होना है। अर्धपारगम्य झिल्ली में से पानी के अणु तो आर-पार जा सकते हैं किन्तु विलेय के अणु बाहर नहीं आ सकते। जब दो विलयन अर्धपारगम्य झिल्ली से विभाजित रहते हैं, यानी जब दोनों के बीच अर्ध-पारगम्य झिल्ली हो, तो पानी के अणु कम से अधिक सान्द्रता वाले विलयन में प्रवेश करते हैं। यहां पानी के अणुओं का विसरण (Diffusion) अर्धपारगम्य झिल्ली में से होता है। इस क्रिया को परासरण अथवा रसाकर्षण (Osmosis) कहते हैं। कोशिका द्रव्य में विलेय पदार्थों की सांद्रता अधिक होने के कारण इसका परासरण प्रभाव अधिक होता है। इसी कारण यह बाहरी माध्यम से पानी के अणुओं को अन्दर खींचता है। इसी प्रक्रिया के द्वारा पेड़-पौधों की जड़ें ज़मीन से पानी खींचती हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या रसाकर्षण उल्टी दिशा में भी हो सकता है? हां, यदि बाहरी घोल की सांद्रता अधिक हो तब यह घटना संभव है। नमक के घोल से अथवा समुद्र के खारे पानी से सींचने पर पौधे का मुरझा जाना भी इसी घटना का उदाहरण है। इस घटना को रस-ह्रास (Plasmolysis) कहते हैं।

'कच्छ वनश्री' अथवा 'मेन्ग्रोव' के बारे में आपने सुना होगा। समुद्र के किनारे ज्वार-भाटे वाले क्षेत्र की दलदली भूमि में कई तरह की वनस्पति फलती-फूलती है। समुद्र तटीय वनस्पति के इस जंगल को मेन्ग्रोव कहते हैं। मेन्ग्रोव में पनपने वाले पेड़-पौधे वर्ष भर हरे-भरे रहते हैं।

समुद्र के खारे जल में जबकि अन्य वनस्पति मुरझा जाती है, मेन्ग्रोव वनस्पति स्वयं को इस नमकीन दलदल में हरा-भरा कैसे रख पाती है? इस रहस्य को जानने के लिए हमने कुछ प्रयोग किए। समुद्र किनारे से कुछ दूरी पर हमने एक फुट ऊंचाई की मिट्टी की क्यारियां बनाई और उनमें मेन्ग्रोव

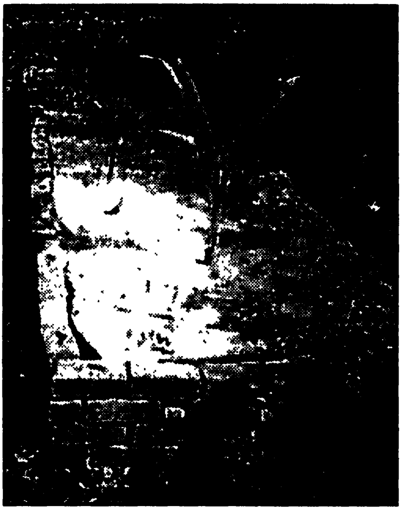

खारे पानी से प्रयोगः ऐसे पौधे चुने जिनमें समुद्री जल की लवणीयता को सहन करने की क्षमता हो। ईंटों की दीवार के बीच रेत भरकर क्यारियां बनाई गईं। उनमें ये पौधे लगाए। फिर उन्हें रोज़ इतना समुद्री पानी देते थे कि पानी रेतीली परत में से बह कर बाहर निकल जाए। दिन भर में वाष्पन की वजह से जो थोड़े से लवण रेत में इकट्ठे हो जाते थे, वे अगले दिन समुद्री पानी से सींचने पर बाहर निकल जाते थे। इससे रेत में लवणों की सांद्रता बढ़ नहीं पाती थी और पौधे भी जीवित बने रहते थे।

में पाई जाने वाली प्रजातियों के कुछ पौधे लगाए। पौधों को सींचने के लिए उसी समुद्री जल का प्रयोग किया जिसमें मेन्ग्रोव पनपते हैं। हमने देखा कि कुछ समय पश्चात पौधे मुरझा गए। प्रयोग के परिणाम से यह प्रश्न उठता है कि मिट्टी की क्यारी में जो वनस्पति समुद्र के खारे पानी को सह नहीं सकती, वह समुद्र किनारे के नमकीन दलदल में स्वयं को तरोताज़ा और हरा-भरा कैसे रख पाती है? कुछ सोच-विचार के बाद इस प्रश्न का हल हमने ढूंढ निकाला।

ज्वार-भाटे का असर

समुद्र के किनारे मेन्ग्रोव वाला हिस्सा ज्वार-भाटे के क्षेत्र में आता है। ज्वार-भाटा के कारण यह भूभाग दिन में दो बार समुद्री जल से धुलता है। इस कारण मेन्ग्रोव के आसपास निरंतर ताज़ा समुद्री जल बना रहता है और लवण की सांद्रता स्थिर रहती है। समुद्री जल में सामान्यतः लवणों की सांद्रता 3.5 प्रतिशत तक होती है। 3.5 प्रतिशत तक सान्द्रता वाले जल में मेन्ग्रोव वनस्पति जीवित रह सकती है। लवण की इससे अधिक मात्रा, वनस्पति के लिए घातक होती है। मिट्टी की क्यारियों में चूंकि समुद्री जल को पूरी तरह निकाल बाहर कर ताज़ा पानी देने की व्यवस्था नहीं होती, अतः समय के साथ क्यारी के पानी में लवण की सांद्रता बढ़ने पर विपरीत दिशा में परासरण (Exo-osmosis)

बीज और फूलः मेन्ग्रोव की एक टहनी जिसमें बीज लगा दिखाई दे रहा है। टहनी के पास मेन्ग्रोव का फूल भी दिखाया गया है। मेन्ग्रोव के बीजों की एक खास बात यह होती है कि शाखा पर लगे-लगे ही ये अंकुरित हो जाते हैं।

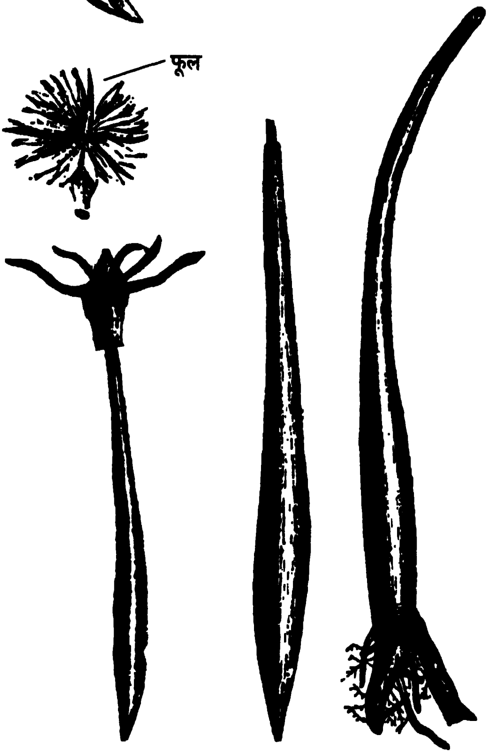

बीज से पौधे का बननाः 'अ' मेन्ग्रोव में फल टहनी पर तब तक बने रहते हैं जब तक बीजों का अंकुरण न हो जाए।
'ब' एक बार बीज ठीक से अंकुरित हो जाएं तो वे दलदल में गिर जाते हैं।
'स' दलदल में गिरे बीज जड़ें पकडने लगते हैं व पौधा बनने की संभावना बढ़ जाती है।

समुद्री तट के दलदली क्षेत्र में मेन्ग्रोव के वृक्ष: हिन्दुस्तान में सुन्दरवन मेन्ग्रोव का सबसे बड़ा जंगल है। यहां 65 प्रजाति के पेड़ पाए जाते हैं जो सालभर हरे-भरे रहते हैं। मेन्ग्रोव में विशेष तरह की जड़ प्रणाली पाई जाती है और कुछ प्रजातियों में समुद्री पानी की लवणीयता से निपटने के लिए विशेष मेकेनिज़्म होते हैं। जैसे सफेद मेन्ग्रोव की पत्तियों में मौजूद ग्रंथियां व राइज़ोफोरा की जड़ें, इन पेड़ों में लवणीयता को घातक सीमा के अंदर बनाए रखती हैं।

के कारण पौधे मर जाते हैं, यानी कि रसह्रास के कारण वे खत्म हो जाते हैं।

अंततः मेन्ग्रोव से सबक लेकर हमने एक ऐसा तंत्र विकसित किया जिसके ज़रिए समुद्र के खारे पानी का उपयोग सिंचाई के लिए किया जा सके। अपने अनुभव और अनुसंधानों से हमने पाया कि कुछ सीमित क्षेत्रों में ही इस विधि का प्रयोग किया जा सकता है। सिंचाई के लिए इस विधि का उपयोग करते समय निम्न बातों का ध्यान रखना ज़रूरी है:

1. प्लांटेशन स्थल समुद्र से अथवा खारे जल के कुएं से अधिक दूरी पर न हो।
2. समुद्री जल अथवा कुएं का खारा जल कम लागत में प्लांटेशन स्थल तक पहुंचाया जा सके।
3. प्लांटेशन के लिए ऐसी वनस्पति का चुनाव किया जाए जो आर्थिक

दृष्टि से लाभकारी हो और जिसमें समुद्री जल का खारापन सहने की क्षमता हो।

4. प्लांटेशन के लिए बनाई गई क्यारियों में रेत का ही प्रयोग किया जाए।

5. सिंचाई की योजना इस प्रकार बनाई जाए ताकि क्यारियों से जल का निकास सुगमतापूर्वक हो सके और क्यारियों में लवणों की सांद्रता वनस्पति की सहनशीलता से अधिक न होने पाए।

इस तरीके को अपनाते हुए समुद्री जल से सिंचाई के प्रत्यक्ष प्रयोग हमने दो जगह करके दिखाए। एक स्थान गोआ राज्य के दोनापौला स्थित नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ ओशिएनोग्राफी और दूसरा महाराष्ट्र के देवगढ़ ज़िले का ग्राम सौंदा था। प्रयोग के लिए हमने समुद्र किनारे के नज़दीक 30 से. मी. ऊंचाई की रेत की क्यारियां बनाईं। रेत-कणों का व्यास 1 से 4 मि.मी. था। इन क्यारियों में लवण सहन करने वाली कुछ वनस्पतियां लगाई गईं। क्यारियों से जल का निकास सुनिश्चित करते हुए प्रतिदिन पर्याप्त समुद्री जल से सिंचाई की गई। दिन में जल के वाष्पीकरण से क्यारियों में नमक की मात्रा बढ़ जाती थी, लेकिन दूसरे दिन दिए जाने वाले ताज़ा समुद्री जल से इसका आधिक्य धुल जाता था। इस प्रकार लवणों की मात्रा को नियंत्रित किया गया। प्रयोग के दौरान क्यारियों में लगाई गई सभी वनस्पतियां जीवित रहीं और इनकी वृद्धि दर भी सामान्य रही।

तीन वर्ष के अनुसंधान से हमने पाया कि उपरोक्त विधि से सिंचाई के द्वारा व्यापारिक महत्व की निम्न वनस्पतियों की पैदावार की जा सकती है।

1. नारियल: खोपरा, तेल, रस्सी, उत्तेजक पेय, आदि का स्रोत।
2. खेजड़ी: ईंधन की लकड़ी, फलियों से पशुखाद्य।
3. पारस पीपल: अच्छे किस्म की लकड़ी।
4. झाऊ: भारी लकड़ी।
5. पीलू: कच्चे फलों का अचार, बीजों के तेल से लॉरिक अम्ल।
6. नीलगिरी, ग्वारफाटा, धायपात, ताड़, नीम आदि।

इस प्रयोग में यह भी पाया गया कि उपरोक्त विधि से फलदार वृक्षों की पैदावार नहीं की जा सकती है। फलदार वृक्षों की जड़ें खारे पानी को सहन नहीं कर पाती हैं।

समुद्री जल से खेती उसी क्षेत्र में लाभदायी हो सकती है जहां वर्षा का प्रतिशत कम हो। महाराष्ट्र की कोंकण पट्टी में अच्छी बरसात होती है इस

मेन्ग्रोव की जड़ प्रणाली

मेन्ग्रोव में पाए जाने वाले पौधों का जड़तंत्र अन्य पौधों से काफी भिन्न होता है। चूंकि मेन्ग्रोव के दलदली इलाकों में ज़मीनी परिस्थितियां अत्यंत भिन्न होती हैं और उन परिस्थितियों में जड़ें अपने सामान्य काम कर पाएं, इसलिए उनमें अलग तरह के जड़तंत्र का विकास (Evolution) हुआ है। मेन्ग्रोव में पाई जाने वाली कुछ प्रजातियों में मोटी-मोटी जड़ें ज़मीन/क्षैतिज के समांतर फैली रहती हैं ताकि पौधों को चौड़ा आधार मिले। चूंकि दलदली ज़मीन में ऑक्सीजन की मात्रा कम होती है इसलिए अक्सर ऐसी जड़ों में से ज़मीन से बाहर की ओर, दूसरे प्रकार की जड़ें (न्यूमेटोफोर) निकलती हैं जिनका काम हवा से गैसों का आदान-प्रदान करना है। पौधा आसानी से उखड़ नहीं जाए इसके लिए तीसरी तरह की 'लंगर जड़ें' (Anchor Roots) होती हैं, जो ज़मीन में गहराई तक जाती हैं और पौधे को स्थाइत्व प्रदान करती हैं। इनके अलावा दलदल की ऊपरी सतह से पोषण ग्रहण करने के लिए बारीक 'पोषण जड़ों' का जाल भी बिछा रहता है।

मेन्ग्रोव की एक अन्य प्रजाति में तनों के निचले हिस्से में ही मोटी-मोटी

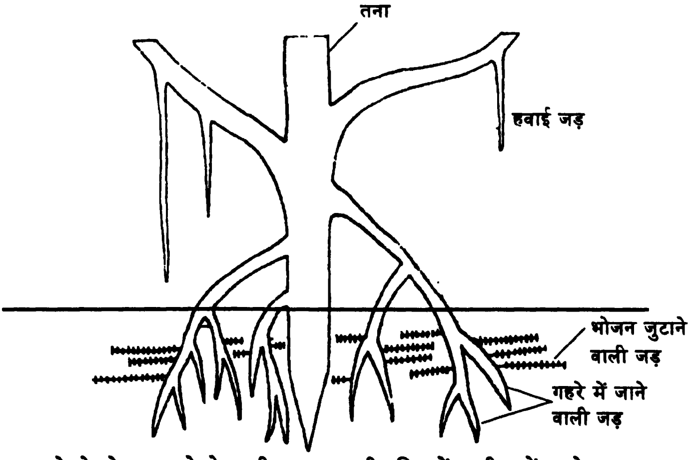

जुड़वां फूल वाले मेन्ग्रोव राइज़ोफोरा की जड़ प्रणाली, जिसमें ज़मीन में गहरे जाकर पकड़ बनाने वाली जड़ें, पेड़ के लिए भोजन जुटाने वाली जड़ें, और हवाई जड़ें साफतौर पर देखी जा सकती हैं।

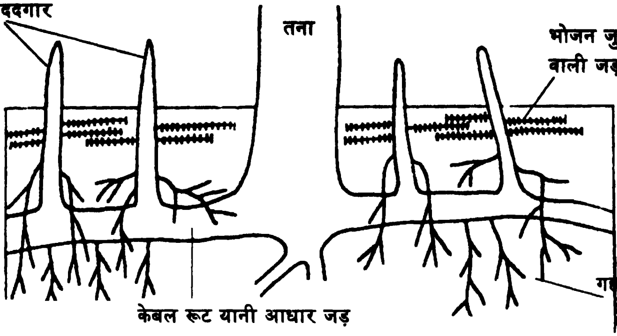

सफेद मेन्ग्रोवः सफेद मेन्ग्रोव में जड़ विन्यास थोड़ा फर्क होता है। इसमें पेड़ की जड़ें अपना क्षैतिज विस्तार करती हैं। इनके अलावा ज़मीन में गहराई में जाकर पेड़ को मज़बूती देने वाली जड़ें भी होती हैं। पेड़ के लिए खाना जुटाने वाली बारीक जड़ें बखूबी फैली होती हैं। क्षैतिज आधार जड़ों में से वे जड़ें ज़मीन के ऊपर निकली होती हैं जो पेड़ के लिए श्वसन का काम करती हैं।

जड़ें फैल कर ज़मीन में चौड़ा आधार बनाती हैं। इनके अलावा इसमें नीचे की शाखाओं से 'एरियल जड़ें' भी निकलती हैं जो हवा में लटकी हुई दिखती हैं, और जो मौका मिलने पर भी ज़मीन पर अपनी पकड़ नहीं बनातीं।

ऐसे ही जड़तंत्र मेन्ग्रोव की अन्य प्रजातियों में भी देखने को मिलते हैं, जो सामान्य तौर पर पाई जाने वाली मूसला और झकड़ा जड़ों से बहुत भिन्न हैं।

वजह इस शोधकार्य से वहां कितना लाभ मिल पाएगा कहा नहीं जा सकता लेकिन कच्छ और सौराष्ट्र इलाकों में इससे काफी फायदा हो सकता है। जिन इलाकों में खारे जल के कुंए अधिक संख्या में होते हैं, उन इलाकों में भी सिंचाई की इस विधि को आजमाया जा सकता है।

ए. डी. कर्वे एवं एन. जे. झेंडे: वनस्पति शास्त्री हैं और 'आरती' (Appropriate Rural Technology Institute) के सदस्य हैं।

यह लेख पुणे से प्रकाशित मराठी संदर्भ के अंक-2, अक्टूबर-नवंबर, 1999 से साभार अनुदित।
इस अनुसंधान के लिए भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा आर्थिक सहायता दी गई थी।

हिन्दी अनुवादः सुधा हर्डीकर। सुधा हर्डीकर रसायन शास्त्र की प्राध्यापिका रही हैं। सेवा निवृत्ति पश्चात होशंगाबाद में निवास।

संदर्भ सदस्यता अभियान

'संदर्भ' की सार्थकता तभी तक है
जब तक उसे पढ़ने वाले हैं।

संदर्भ को आप बरसों से जानते हैं, पढ़ते हैं,
संदर्भ के लिए कुछ करने का मौका आपके पास है।
अपने आसपास के स्कूलों, कॉलेजों, शिक्षकों,
अपने मित्रों को संदर्भ के बारे मे जानकारी दीजिए।
उन्हे संदर्भ पत्रिका का वार्षिक सदस्य बनाइए।

यदि आप संदर्भ के लिए पांच वार्षिक सदस्य बनाते हैं तो एक साल तक संदर्भ आपको बतौर उपहार भेजी जाएगी। दस सदस्य बनें ता दो साल, पंद्रह बनें तो तीन साल तक।

बस आपको इतना ही करना है कि आपके द्वारा बनाए गए पांच सदस्यों का सदस्यता शुल्क, नाम एवं पते हमारे पास भेजिए।

सदस्यता शुल्क आप मनीऑर्डर या बैंक ड्राफ्ट से भेज सकते हैं। बैंक ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं।

ड्राफ्ट बनवाई या मनीऑर्डर का खर्च आप सदस्यता शुल्क में से काटकर शेष राशि भेज सकते हैं।

एकलव्य
कोठी बाज़ार, होशंगाबाद
म. प्र. 461001, फोन: 07574 - 53518
ई-मेल: eklavyah@yahoo.com

हम हैं गाय की जात

विद्युल्लेखा अकलूजकर

अगर विद्यार्थियों को सोचने की, अभिव्यक्त करने की छूट दी जाए और उन्हें धीरे–धीरे इसकी आदत पड़ जाए तो कल्पनाओं का आकाश कितना विस्तृत हो सकता है। कनाडा में कॉलेज में लड़के–लड़कियों को हिन्दी पढ़ाते हुए लेखिका के अनुभवों में इसकी एक झलक दिखाई देती है।

हमारी भाषा और हमारी ज़िंदगी का कितना करीबी रिश्ता है, यह पूरी तरह दिखा पाना तो कठिन है, लेकिन मुझ जैसी पढ़ाने वाली को तो हर दिन नए किस्म के अनुभव मिलते रहते हैं। एक साधारण-सा निबंध लिखने जैसी बात को ही लेते हैं। भाषा की पढ़ाई करने वाले विद्यार्थी

निबंध में क्या लिखते हैं उस पर से उनकी भाषा यानी शब्द भंडार, वाक्यों की संरचना, व्याकरण वगैरह का अंदाज़ तो लगा ही सकते हैं; उनकी ज़िंदगी में किस चीज़ का कितना महत्व है यह भी समझ में आ जाता है। हाल ही में मैं इस सच्चाई से वाकिफ हो सकी हूं। विषय था गाय-बैल और मेरे विद्यार्थी थे कनाडा के निवासी, लेकिन इस 21वीं सदी में भी हिन्दी सीखने के इच्छुक। परन्तु इस अनुभव को बताने से पहले गाय-बैल के बाबत मेरे कुछ निजी अनुभव बताना भी मैं ज़रूरी समझती हूं और इसके लिए हमें थोड़ा इतिहास-भूगोल भी छूना पड़ेगा।

मेरे बचपन की गाय

बचपन से ही गाय से मेरे मधुर संबंध रहे हैं। मैं पुणे के केन्टोनमेंट इलाके में रहती थी जहां सड़क चलते काली, सफेद या तांबई रंग की गाय सुस्ताते हुए दिख जाती थी। इन आराम फरमाती गायों को देखकर उनके सींग से डर का अहसास होने से पहले उनकी बड़ी-बड़ी आंखों में दीनता, उनका हृष्ट-पुष्ट बदन, बैठी हुई गाय के मुड़े हुए पांव, पुष्ट थन..... वगैरह का एक चित्र दिमाग में कौंध जाता था; और सुस्ता रहे गाय-बैलों के चित्र बनाने की कोशिश भी मैं करती थी। कोई भी विषय मुझे चित्रों के मार्फत ज़्यादा अच्छी तरह समझ में आता था और इसीलिए मैं अब पढ़ाते वक्त भी जितना ज़्यादा संभव हो, चित्रों का इस्तेमाल करती हूं।

जब मैं थोड़ी और बड़ी हुई तो हमारे सैफी स्ट्रीट वाले मकान के बाहर एक गाय वक्त-बेवक्त आ खड़ी हो जाती थी। वो रंभाती नहीं थी लेकिन चलने पर उसके गले में बंधी घंटी बजती थी जिससे उसके आने की सूचना मिल जाती थी। फिर मैं उसे केले-तरबूज के छिलके खिलाने के लिए खुशी-खुशी आंगन तक जाती और दरवाज़े से सिर्फ कोहनी तक हाथ बाहर निकालकर गाय को ये सब छिलके खिलाती। जब गाय उन्हें अपना निचला जबड़ा हिला-हिलाकर खाती तो मैं अचरज से देखती रहती।

एक नियम-सा बन गया था कि जैसे ही गाय हमारे आंगन के सामने खड़ी होगी, हमारे पड़ोस के पारसी दादाजी का कुत्ता – मिकी, गाय पर ज़ोर-ज़ोर से भौंकना शुरू कर देगा। लेकिन गाय सारे छिलके आराम से चबा-चबाकर खाती रहती थी और वह मिकी की ओर बिल्कुल भी ध्यान नहीं देती थी। 'यदि हमारे काम से किसी दूसरे को किसी किस्म की परेशानी नहीं हो रही हो तो किसी के चीखने-चिल्लाने की वजह से अपना काम नहीं रोकना चाहिए', लगभग इसी भाव से गाय अपने काम में लगी रहती थी। काफी बाद में मुझे हिन्दी का एक मुहावरा पता चला जो हाथी

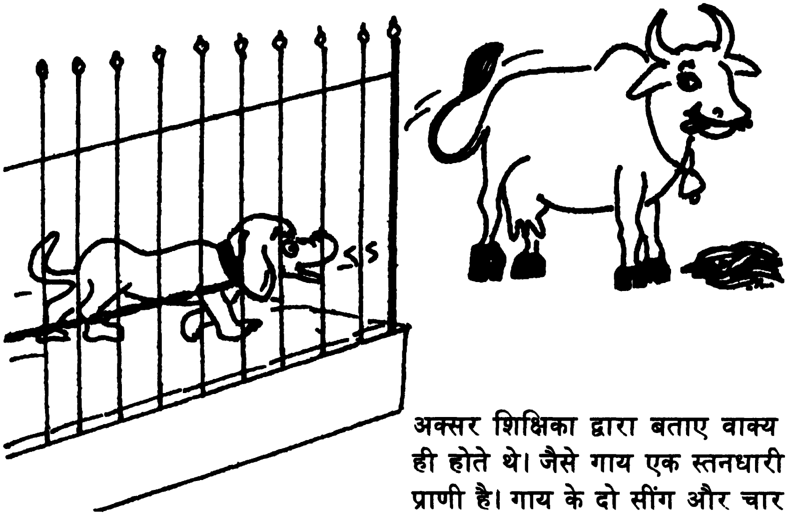

के बारे में था – हाथी चले अपनी चाल, कुत्ते भौंके हज़ार। पड़ोसी के कुत्ते मिकी का सींखचों के पीछे से भौंक-भौंककर गला सूख जाता था, बेसुरा हो जाता था, तब कहीं जाकर गाय पूंछ से अपने शरीर पर बैठी मक्खियों को उड़ाती हुई आगे के पड़ाव की ओर चल पड़ती। बंद दरवाज़े के पीछे से मिकी कितना भी भौंके कोई नुकसान नहीं पहुंचा पाएगा, गाय को यह कहां से पता चला ये तो मालूम नहीं, लेकिन गाय भी होशियार होती है यह मुझे इसी से ही पता चला।

गाय की होशियारी का इस्तेमाल संभवतः मैंने निबंध लेखन में किया होगा ऐसा मुझे लगता है क्योंकि कक्षा में और बच्चों द्वारा लिखे निबंधों में अक्सर शिक्षिका द्वारा बताए वाक्य ही होते थे। जैसे गाय एक स्तनधारी प्राणी है। गाय के दो सींग और चार टांगें होती हैं ..... वगैरह। और सबसे आखिर में ..... इसलिए गाय मुझे पसंद है, इस वाक्य से निबंध का अंत होता था। लेकिन हमारे घर आने वाली गाय की वजह से मेरे निबंध में कुछ नयापन ज़रूर रहा होगा क्योंकि बहनजी ने मेरे लिखे निबंध को कक्षा में पढ़कर सुनाने के लिए कहा था ऐसा मुझे याद पड़ता है।

भारतीय समाज में गाय

भारत के पुणे जैसे शहर में पलते-बढ़ते हुए भी गाय, बछड़े, बैल वगैरह आसानी से दिखाई दे जाते थे। कॉलेज में पढ़ते समय सायकिल से आते-जाते हुए, अपने गाय-ढोरों को नदी पर ले जाते चरवाहे अक्सर दिखाई देते थे। भूसे में लिपटी हुई बर्फ की

सिल्लियों को ले जाती बैल गाड़ियां रास्ते में दिख जाती थीं। बैलपोळा, वसुबारस जैसे त्यौहारों के बारे में तो मालूम ही था। गौरक्षा करने वाले लोग भी अक्सर गायों के लिए चंदा इकट्ठा करने घूमते थे। गली-मौहल्लों में सजे-धजे बैलों को लेकर अक्सर बैलवाला आता था, और एक खास किस्म का बाजा बजाता था जिससे पता चल जाए कि वो आ गया है।

धीरे-धीरे भाषा-बोली और लोगों के व्यवहार और बातचीत से गायों के बारे में अच्छी-बुरी धारणाएं समझ में आने लगीं। कृष्ण और गायों के घनिष्ठ संबंधों का कई काव्य-कविताओं में उल्लेख है। कई पौराणिक कथाओं में खतरों में फंसी धरती माता गाय का रूप धारण करके विष्णु की शरण में जाती थी। दत्त (त्रिदेव) की प्रतिमा के पीछे भी एक गाय को हमेशा दिखाया जाता है। शिवालय के सामने भी नंदी बैठा हुआ दिखता है। इस तरह सारे देवता इन गाय-बैलों के रक्षक होने की वजह से, गाय मौन प्राणी होने के बावजूद, देवताओं के दरबार में उसका खासा पौआ चलता है; यह बात बचपन में ही मालूम हो गई थी। गोहत्या यदि महापाप है तो गोदान एक महापुण्य। गाय को गोग्रास (एक निवाला खाना) देना भी एक पुण्य है; लोगों की इस भावना का भरपूर फायदा लेने वाले लोगों को भी मैंने देखा है। कुछ चरवाहे गाय-ढोरों को सीधे ही जंगल में चरने के लिए ले जाते हैं। वहीं कुछ वृद्ध महिलाएं इकट्ठा किया हुआ चारा अपनी गायों को सीधे-सीधे खिलाने के बजाए चारे की छोटी-छोटी ढेरियां बनाकर अपने पास रखती हैं। उस

वृद्ध महिला से आस्थावान लोग पैसे देकर चारे की ढेरी खरीदकर गाय को खिलाते हैं। इस तरह लोगों को गाय को खिलाने का पुण्य मिलता है, वहीं गाय को चारा और वृद्धा को पैसा। लेकिन उस समय वास्तव में किसे क्या मिल रहा है या कौन ठगा जा रहा है, यह समझने की मेरी उम्र नहीं थी। लेकिन और भी मज़ेदार अवलोकन थे मेरे। रास्ते चलते यदि सामने गाय आ जाए तो मेरे साथ की कुछ लड़कियां गाय के पुट्ठे पर हाथ लगाकर फिर अपने गले पर लगाती थीं, तो कुछ लड़कियां बैठी हुई गाय की पूंछ को उठाकर अपने बालों से छुलाती थीं। पूछने पर पता चला कि गाय एक पवित्र प्राणी है इसलिए ऐसा करना चाहिए। इससे गाय की पवित्रता का कुछ हिस्सा हमें भी मिल जाता है।

गाय के बदन पर पिस्सू, गोमक्खी वगैरह हमेशा ही होते थे। यदि रास्ते पर बैठी गाय अपनी लंबी बैठक के बाद उठती तो उसके पुट्ठे पर चिपका सूखा गोबर भी दिखता था। हमारे घर में साफ-सफाई की जो बातें सिखाई जाती थीं उनके हिसाब से तो गाय को छूना भी संभव नहीं था। इसलिए बाकी लड़कियां जो करती हैं वैसा करने का मेरा मन कभी भी नहीं हुआ। लेकिन साथ की लड़कियां जो करती उसके बारे में घर पर मां को बताने पर मां एक खासा प्रवचन दे देती थी; जिसमें अपने धर्म में गाय का स्थान, प्राचीन भारत में खेती के लिए उसकी उपयोगिता, मौजूदा दौर में उसकी दयनीय हालत, रास्ते में बैठी गाय की वजह से यातायात में होने वाला अवरोध, गाय-बैलों को सलीके से न पालकर उन्हें सड़कों पर छोड़ देने वाले लापरवाह मालिक, गोदान वगैरह जैसी बातों के झांसे में फंसा हमारा समाज आदि, आदि कई बातों की समझाइश मुझे दी जाती थी। और इस सबके बाद किसी तरह का शक-शुबह न हो इसलिए मुझे हाथ धोने के लिए फिर एक बार भेजा जाता था।

एक ओर हिन्दूधर्म में बताई गई गाय की पवित्रता समझ में आती थी, छत्रपति शिवाजी द्वारा गाय और ब्राह्मणों की रक्षा के लिए स्थापित स्वराज दरअसल किन कारणों से स्थापित हो सका, वो भी समझ में आने लगा था। दूसरी ओर 20वीं सदी में बांद्रा में मौसी के घर रहते हुए एकदम जर-जर गायों को, जिनके शरीर पर तांबई निशान बने होते थे, कसाईखाने की ओर ले जाते हुए भी हम देखा करते थे। कसाईखाने की ओर सिर झुकाए जाती हुई गायों को देखकर मुझे उन गायों पर बेहद दया आती थी और उन गायों की ज़िंदगी बचा पाने में अपने अक्षम होने का दुख भी होता था।

इसके अलावा हमारे आसपास

अलग-अलग तौर-तरीकों वाले लोग रहते हैं जिनमें से कई सारे गाय का मांस स्वाद के साथ खाते हैं, यह भी मैं जानती थी। मुझे मांस खाने में कोई रुचि नहीं थी इसलिए मांस खाने के मामले में मेरा उनसे एकमत होना मुश्किल था। इस तरह गाय के बारे में हमारे समाज के परस्पर विरोधी संदर्भों को देखते हुए मैं बड़ी हुई थी।

लड़की से युवती होते हुए मैंने हमारे समाज में गाय और औरत के साम्य के बारे में काफी कुछ देखा। 'गैया-मैया एक जैसी' या 'गोशाला में गैया वैसे घर में मैया' जैसे मुहावरे कानों पर आए। औरत जात को गाय की तरह ममतामयी और सहनशील होना चाहिए, ऐसी समाज की औरत से अपेक्षा है यह समझ में आया। अपने सींग तोड़कर बछड़ों की जमात में शामिल होने वाली गायों के बारे में भी मुहावरे थे, लेकिन किसी के परेशान किए जाने पर अपने सींगों का इस्तेमाल कर सबक सिखाने जैसे कारनामे गायों के हिस्से में हमारे समाज ने कभी भी नहीं दिए; ये सब कारनामे फूहड़ समझी जाने वाली भैंसों के हिस्से में गए। यदि किसी झगड़ालू महिला की किसी से तुलना करनी हो तो वो भैंस से की जाती है – झगड़ालू भैंस कहकर। लेकिन 'गरीब गाय' हमेशा अपनी सज्जनता की लक्ष्मण रेखा में ही रहती आई है।

उन्हीं दिनों कभी 'संगीत शारदा' नाटक पढ़ने और देखने का मौका मिला था। इस नाटक में धन के लालच में एक बाप अपनी बेटी की शादी एक बूढ़े-खूसट से करने की योजना बनाता है। इस योजना के बारे में पता चलने पर लड़की शारदा कहती है – 'हम गाय की जात, नहीं जुबां पर बात'। शारदा जो कहती है वह सुनकर मुझे अचरज हुआ कि क्या कोई लड़की सचमुच ऐसी हो सकती है! मुझे तो यह कभी सच नहीं लगता था क्योंकि मैं काफी खुले पारिवारिक माहौल में पली और बड़ी हुई थी। कसाई को गाय बेचने की तरह पैसों की खातिर अपनी बेटी को किसी बूढ़े को बेचने जैसी बात हज़म कर पाना मेरे लिए खासा कठिन था। लेकिन नाटक में शारदा की मां इंदिरा अपने पति से सवाल पूछती है, "रस्सी बांधकर लड़की को

बेचना, गोशाला में बंधे जानवर को बेचने जैसी बात नहीं है क्या?" ऐसा तीखा सवाल पूछने वाली इंदिरा को मैं अपने काफी करीब पाती थी।

धीरे-धीरे अखबार वगैरह ध्यान से पढ़ने पर समझ में आने लगा कि शारदा नाटक कितना भी पुराना हो जाने के बाद भी प्रासंगिक रहेगा। आगे भी ऐसे कई सारे वाकयातों से समझ में आया कि बाप से डरने वाली लड़कियां और 'हम गाय की जात', ऐसे वर्णन के योग्य औरतें हमारे समाज में अक्सर दिखाई देती हैं।

60 के दशक के आखिर में भारत छोड़कर अमरीका आने पर गाय के बारे में मेरी धारणाओं में और नई बातें जुड़ीं। मराठी में गाय से संबंधित प्रचलित विविध कहावतों को यहां अमरीका-कनाडा में एकदम भिन्न अर्थ और संदर्भ में मुझे समझना पड़ा था।

कनाडा में पढ़ाते हुए

पिछले 10-12 सालों में मैं बीच-बीच में ब्रिटिश कोलंबिया यूनिवर्सिटी में अलग-अलग कक्षाओं को हिन्दी पढ़ाती रही हूं। वैसे गरीब गाय से या हट्टे-कट्टे सांड-बैलों से मेरे विद्यार्थियों का कोई सीधा संबंध नहीं है। लेकिन फिर भी इससे संबंधित निबंध लिखने का होमवर्क मैंने उन्हें हाल ही में दिया था। मेरी कक्षा में काफी सारे विद्यार्थी इंडो-केनेडियन यानी पंजाबी, गुजराती, बंगाली परिवारों से, कुछ सिंहली, कुछ फिजी से आए हुए और इनके अलावा कुछ गोरे केनेडियन भी हैं। यूनिवर्सिटी की माली हालत ठीक न होने की वजह से ये सब अलग-अलग स्तर के विद्यार्थी एक ही कक्षा में प्राथमिक हिन्दी सीखने आ रहे थे। घरों में हिन्दी फिल्में देखकर और मातृ भाषा पंजाबी होने की वजह से कुछ विद्यार्थियों का शब्द भंडार थोड़ा बेहतर था। शेष गोरे या अश्वेतों को मैं क्लास में सीखाती, उतनी ही हिन्दी उन्हें आती थी और वे व्याकरण की सीढ़ी पर चढ़ते हुए शब्दकोशों के सहारे किसी तरह भाषा सीख रहे थे।

पहले साल की दूसरी छिमाही में मैं कभी-कभी एकदम साधारण चित्र को देखकर वर्णन लिखने के लिए कहती। यदि चित्र को देखकर किसी का कहानी लिखने का मन हो तो वो भी लिख सकते हैं, यह भी मैं बता देती थी। इस लेखन के दौरान शब्द खोजने, वाक्य बनाने में मैं उनकी मदद करती हूं। चित्र वर्णन वाला अभ्यास कई बार काफी मज़ेदार होता है। विद्यार्थी जो लिखते हैं वो मुझे तो मज़ेदार लगता ही है लेकिन मैं उन्हें उसे कक्षा में पढ़कर सुनाने के लिए भी कहती हूं। पढ़कर सुनाने से बाकी विद्यार्थियों को भी नए शब्द, लोकोक्ति आदि हंसते-हंसते पता चल जाते और मज़ा भी

आता था। बाद में मैं हर साल चुने हुए निबंधों का एक संकलन विद्यार्थियों के लिए सीमित संख्या में प्रकाशित करती हूं। इस संकलन को विद्यार्थी बेहद रुचि के साथ अपने पास सम्हाल कर रखते हैं। इस बार मैंने जो चित्र दिया, वो कुछ इस तरह था:

एक बरगद के पेड़ के नीचे दो ढोर आराम फरमा रहे हैं। संभवतः बैल, लेकिन वे गाय या बैल कुछ भी हो सकते हैं। उन दोनों में से एक की पीठ हमारी ओर है और उसका मुंह नहीं दिख रहा। दूसरे का मुंह हमारी ओर है और उसकी पीठ पर एक कौआ बैठा हुआ है। विद्यार्थियों को इन ढोरों को गाय या बैल में से कुछ भी कहने की छूट दी गई थी और सिर्फ एक पेज का वर्णन लिखना था। उनके लिखे को जांचते समय मुझे 'जितने लोग उतने ही मिजाज़', इस उक्ति का अहसास हुआ। कुछ छात्रों ने अपने सीमित शब्दकोश का इस्तेमाल करते हुए सिर्फ चित्र का सरल ब्यौरा दिया था। पहले साल के विद्यार्थियों के हिसाब से उतना भी पर्याप्त था। लेकिन कुछ विद्यार्थियों ने अपनी कल्पनाओं के घोड़ों को खूब

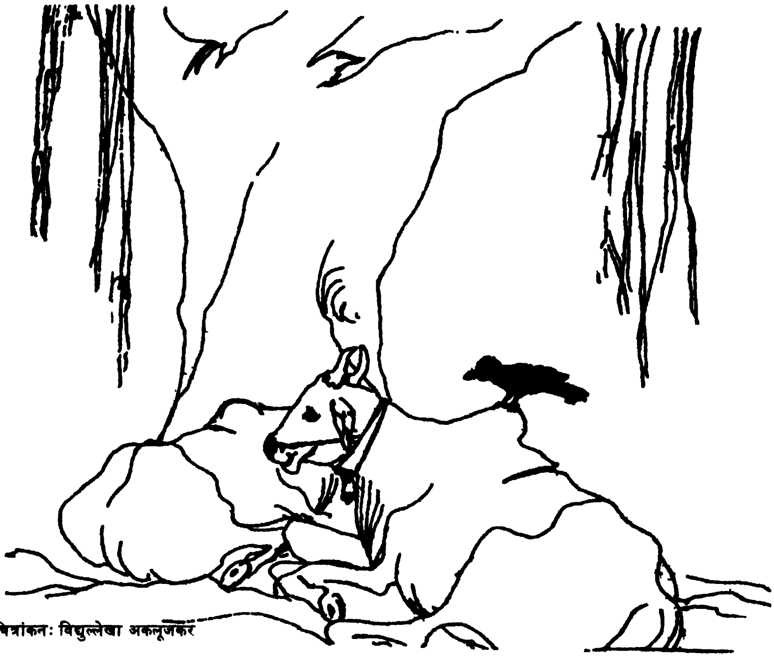

चित्रांकन: विद्युल्लेखा अकलूजकर

दौड़ाया था। आगे हम छात्रों के लेखन के कुछ नमूनों पर चर्चा करेंगे।

तीन दोस्तों की कहानी

विशाल शर्मा ने जो लिखा वह कुछ इस तरह था: *दो बैल और एक कौवा ये तीनों दोस्त थे। काफी काम करने के बाद बैल थककर पेड़ के नीचे बैठ गए। कौवा भी आया और बैल की पीठ पर बैठ गया।*

बड़ा बैल, "उफ, आज तो काफी थक गए।"

छोटा बैल, "सच भैया, आज कितना काम करना पड़ा। क्या किया जाए?"

बड़ा बैल, "मैं सोचता हूं, तुम लोग भी विचार करो।"

फिर काफी सोच-विचार के बाद बड़े बैल को कुछ सूझा।

कौवा और छोटा बैल चिल्लाने लगे, "बताओ, बताओ।"

"खामोश रहो, बताता हूं।" बड़ा बैल बोला, "कल मालिक उठने से पहले हम यहां से भाग खड़े होंगे।"

"हां वह सब तो ठीक है लेकिन भागकर जाएंगे कहां?" उन दोनों ने पूछा।

बड़ा बैल बोला, "मुझे लगता है बंबई जाना चाहिए। सुना है वहां ऐश्वर्या राय रहती है। लेकिन श श...... चुप।"

विशाल के ये बॉलीवुड की फिल्मी दुनिया में रमने के इच्छुक बैल सारी क्लास को हंसा गए। अगला निबंध निशी भोपाल ने पढ़ा। उसका निबंध था तो छोटा-सा लेकिन उसने एक फर्क भौगोलिक संदर्भ दिया था।

भागकर जाने वाले बैल और कौवा

ये दोनों बैल अर्जेंटाइना के हैं। वे काफी थकने के बाद बरगद के पेड़ के नीचे बैठे हैं। थके हुए इसलिए हैं क्योंकि वे मेकडोनाल्ड्स की फेक्ट्री से काफी दूर भागकर आए हैं। उनको 'बिग मैक' से सबसे ज़्यादा डर लगता है। कौवा भागने में उनकी मदद करने वाला 'स्नेक हेड' है। बैल भारत की ओर जाने वाले हैं। उनको भारत पसंद है क्योंकि भारत में सब लोग उनकी पूजा करते हैं, कोई गाय-बैल नहीं खाता। बैल बंबई जाकर बॉलीवुड में फिल्म स्टार बनने के सपने देखते हुए आराम कर रहे हैं।

बॉलीवुड की फिल्मी दुनिया का यहां के इंडो-केनेडियन लड़के-लड़कियों में कितना आकर्षण है यह तो हमने इन दो निबंधों में देखा ही है। भागकर जाने की योजना बनाने वाले विशाल के बैलों से भी आगे निकल जाते हैं निशी के बैल।

निशी के बैल वास्तविकता के करीब हैं। वे त्रासद परिस्थितियों से भागकर जाते हुए थके हैं। चीन तथा कुछ अन्य

पूर्वी देशों से, स्मगलर्स को कुछ ले-देकर कुछ लोग अवैध रास्तों से कनाडा के पश्चिमी तट पर जहाज़ से उतरने की कोशिश करते हैं, और एक बेहतर ज़िंदगी की खोज में बीच के दलालों 'स्नेक हेड्स' को काफी पैसा ताउम्र देते रहते हैं; ऐसी खबरें यहां अक्सर सुनाई देती हैं। कनाडा की इस हकीकत की, मेकडोनाल्ड्स कंपनी में हैम्बर्गर के लिए चल रही गोहत्या की और भारत की सुनी-सुनाई गो-पूजा की बातें ......। कुल मिलाकर इस छात्रा ने अपने इस छोटे से निबंध में, इन सबको पिरो दिया था। साथ ही निशी की समाज शास्त्र व अर्थशास्त्र की पढ़ाई भी इस निबंध में झलक रही थी जिसकी वजह से चित्र के पशु भी एकदम फर्क लग रहे थे।

मनोविज्ञान का विद्यार्थी गैरी (गौरव आर्य) क्लास में काफी खामोश बैठता है। अपने कथानक में उसने बैलों का मनोविश्लेषण करने की कोशिश की थी।

बैल और उसका कौवा

इस चित्र में बरगद के नीचे बैठे हुए दो बैलों में से पीछे वाला बैल दुखी है, क्योंकि साथ वाले बैल की पीठ पर बैठे कौवे को देखकर उसे अपने कौवे की याद आ रही है।

कल तक उसके पास भी कौवा था लेकिन पिछली रात वो उड़ गया और वापस ही नहीं आया। इसलिए पीछे वाले बैल को अकेलापन महसूस हो रहा है।

थोड़ी देर में रात हो जाएगी और यह कौवा भी उड़ जाएगा और आगे वाला बैल भी अकेला हो जाएगा। फिर दोनों बैल आपस में बातचीत करेंगे और खुशी-खुशी रहेंगे।

"रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्।" इस सुवाक्य की याद मुझे इस निबंध को पढ़कर हुई। कमल की पंखुड़ियों में कैद एक भंवरा यह सोचता है कि अब रात खत्म होगी, फिर सूरज निकलेगा, कमल खिलेगा और मैं भी इस कमल से बाहर निकल सकूंगा। वैसे ही गैरी का उदास बैल भी भविष्य की ओर आंखें लगाकर अभी की कठिन परिस्थितियों को सहने की कोशिश कर रहा है। मुंह पीछे की ओर छुपाकर बैठे बैल के अकेलेपन के बारे में कल्पना कर पाना भी अपने आप में एक अहम बात है।

दोस्ती, साथ आदि की ज़िंदगी में अहमियत और अकेलापन, ईर्ष्या इन सब पर 'समय' ही एक मात्र उपाय है, यह थोड़ी अलग किस्म की सोच गैरी के निबंध में दिखाई देती है। कक्षा में गैरी की खामोशी में चिंतन का पुट भी है, यह मुझे दिखाई दिया।

गैरी के पास बैठने वाले पवित पॉल ने अपने निबंध में मनोविज्ञान

और राजनीतिक कुटिलता इनको साथ-साथ दिखाया था। उसने जो पढ़ा, वह कुछ इस प्रकार है:

गाय, बैल, कौवे की कहानी

बरगद के पेड़ के नीचे गाय छाया में सो रही थी। वहां एक कौवा आया। उसे भी छाया में सोना था। लेकिन वो गाय को अपनी ताकत के दम पर वहां से भगा नहीं सकता था। बैल और गाय साथ-साथ रहते थे। इसलिए वो गाय के साथ रहने वाले बैल के पास गया और बैल की पीठ पर बैठते हुए बोला, "गाय मुझसे कह रही थी कि मैं एक बेवकूफ बैल के साथ रह रही हूं।" यह सुनकर बैल को गुस्सा आया और उसने गाय को वहां से भगा दिया।

उसके बाद सिर्फ बैल और कौवा ही छाया में सोते थे लेकिन उस बरगद के पेड़ को वे दोनों पसंद नहीं थे, इसलिए एक दिन बरगद का पेड़ उन दोनों के ऊपर गिर पड़ा जिससे वे दोनों दबकर मारे गए।

लेकिन बरगद का पेड़ भी बेवकूफी कर गया। अब उसने फिर से उठने की काफी कोशिश की, लेकिन वह दोबारा उठकर खड़ा न हो सका।

हरेक छात्र के निबंध में चित्र में दिखाए जानवरों के स्वभाव बदलते जा रहे थे। पवित पॉल की कहानी में तो पेड़ को भी एक इंसानी शख्सियत की तरह पेश किया गया था। इस कहानी में कौवा बेहद स्वार्थी था, और बैल कान का कच्चा व बेवकूफ। कहानी में संक्षेप में नाटकीयता कैसे लाना है यह भी पवित पॉल को मालूम था। 'द रेमेडी इज़ वर्स देन द डिसीज़' इस लोकोक्ति को चरितार्थ करते हुए पेड़ की जल्दबाज़ी भी इस कहानी के अंतिम हिस्से में थी। जब उसने कहानी पढ़कर सुनाई तो पूरी क्लास हंस पड़ी। एक छात्र ने सवाल भी किया कि "इस कहानी से क्या सार निकला?" पवित ने कहा, "कुछ नहीं, बेवकूफ मत बनो।" कहानी का सार जानने के बाद मुझे यह कहानी पंचतंत्र में रखने के लिए उपयुक्त लगी।

गाय के बारे में धार्मिक परम्पराओं का ज़िक्र सिर्फ एक लड़की ने किया था। शोभा का लिखा इस तरह था:

सहारनपुर गांव में कृष्ण जन्माष्टमी के उत्सव की तैयारी चल रही थी। यहां कार्यक्रम में गायों को काफी महत्व दिया जाता था क्योंकि कृष्ण ने कई साल पहले गायों की पूजा की शुरुआत की थी। लोग मंदिर में जाकर कृष्ण की पूजा करते हैं फिर गायों को सजा-संवारकर उनका जुलूस निकालते हैं। उत्सव की ये तैयारियां चल रही थीं, तभी ज़ोरदार आंधी-तूफान आ गया। इस तूफान से डरकर मंदिर की दो गायें भागकर एक बरगद के पेड़ के नीचे रुक गई हैं। आंधी-तूफान थमने

के बाद लोग मंदिर से बाहर निकलकर आए और सजाने के लिए गायें खोजने लगे। लेकिन गायें नहीं मिल रही थीं। फिर आसमान से गायों का दोस्त कौवा नीचे उतरा और उसने बरगद के नीचे रुकी गायों को खोज निकाला।

वैसे यह निबंध एकदम सीधा-सीधा था। कनाडा में पलने-बढ़ने के बाद भी लड़की को उत्सव की इतनी जानकारी होने का कारण था – 'हरे कृष्ण संप्रदाय' हर साल यहां के मंदिर में भारतीय तौर-तरीकों से जन्माष्टमी का त्यौहार मनाता था, और इस उत्सव में उसके घर के लोग शिरकत करते थे।

इस तरह अलग-अलग निबंधों में चित्र में दिखाए गाय-बैल अलग-अलग किरदारों में सामने आ रहे थे। और हरेक का निबंध सुनते हुए मुझे छात्रों की क्लास के बाहर की ज़िंदगी का अंदाज़ा लग रहा था।

गेब्रियल कोहन नाम का एक गोरा यहूदी लड़का भी मेरी हिन्दी की कक्षा में है। वो संस्कृत और भारतीय मिथक, इन दो कक्षाओं में भी था। उसने अनुवादों के ज़रिए वैदिक और पौराणिक मिथकों को पढ़ा था और मज़हब के इतिहास को जानने की वजह से हिंसा, क्रोध, शोक आदि से वह वाकिफ था। उसने जो लिखा वह इस तरह था।

बरगद के पेड़ के नीचे

बरगद के पेड़ के नीचे एक अंधी गाय रहती थी। एक बदसूरत कौवा आकर उसकी पीठ पर बैठा। गाय ने उससे पूछा, "तुम कौन हो?"

कौवा बोला, "मैं राजा का सुंदर मोर हूं। मुझे दाल-चावल दो।"

"मेरे पास दाल-चावल नहीं हैं।" गाय ने कहा।

भूख से परेशान कौवे ने कहा, "तो फिर मुझे आम दो, केले दो।"

गाय ने कहा, "मेरे पास ये भी नहीं हैं, सिर्फ दूध है।"

तब कौवे ने कहा, "तो फिर तुम अपनी आंखों की स्वादिष्ट पुतलियां मुझे खाने दो। वैसे भी तुम अंधी हो इसलिए तुम्हारे ये किसी काम की नहीं हैं।"

गाय ने कहा, "ठीक है।"

कौवे ने गाय की आंखों की पुतलियां खाईं और मरकर गिर गया, क्योंकि गाय की आंखें कांच की थीं।

जब गेब ने उसका निबंध पढ़कर सुनाया तो पूरी कक्षा को सांप सूंघ गया। पहली बार एक मनोरंजक लगने वाली कहानी का अंत इतना सनसनी-खेज था। छह महीने पहले इस लड़के को हिन्दी के अक्षरों की ठीक से पहचान भी नहीं थी। लेकिन गेब के निबंध में संक्षेप में दुनिया में अंधत्व, ठगी, हिंसा और आखिर में इंसाफ, इन सबको प्रस्तुत किया गया था। यह सब देखकर मैं चकित हो गई। इससे आगे भी जब गेब द्वारा अद्वितीय कहानियां या उपन्यास लिखे जाएंगे तब मुझे उसके

इस हिन्दी निबंध की याद आती रहेगी।

कुछ लड़कियों ने साधारण, घरेलू मामलातों पर भी निबंध लिखे थे। प्रीतिका ने चित्र से एक प्रेमकथा बनाई थी। उसकी शब्द संपदा थोड़ी सीमित ही थी। उसकी कहानी में सिर्फ एक बैल और एक कौवा था। उसकी कहानी इस प्रकार थी:

राम और उमा

एक सुंदर बैल था, उसका नाम राम था। वो रोज़ पेड़ के नीचे आता था। एक काली कौवी थी, उसका नाम उमा था। वो भी रोज़ पेड़ के नीचे आती थी।

राम को नहीं मालूम था कि उमा उससे प्यार करती है।

सोमवार की शाम को उमा ने राम को बताया कि मैं तुमसे प्यार करती हूं। राम बेहद खुश हुआ।

लेकिन मैं कदकाठी में काफी बड़ा हूं और उमा काफी छोटी। फिर यह मेल किस तरह से हो? ऐसी राम के मन में शंका थी।

उमा ने कहा, "चिंता मत करो, मैं बावजूद इस सबके तुमसे ही प्यार करती हूं।"

फिर राम और उमा ने शादी कर ली।

इंटरकास्ट या मिश्रित विवाह की यह प्रेमकथा सुनकर कुछ ख्वाबों की सैर करने वाली लड़कियों के चेहरे खिल गए और उनकी आंखों में और भी सपने तैरने लगे थे। लेकिन कुछ यथार्थवादी, व्यावहारिक छात्र हंसने लगे और प्रीतिका ने भी कंधे उचकाए।

इसके बाद मैंने कमील से उसका निबंध सुनाने के लिए कहा। कमील फिजी से यहां आई है। बरसों पहले फिजी में उत्तर प्रदेश के हिन्दी बोलने वाले काफी लोग बस गए थे। उन लोगों ने अंग्रेज़ी को अपना लिया है। उनके रहन-सहन व दिखावे पर फैशन का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। परन्तु यहां कनाडा में रहते हुए भी उनकी निजी ज़िंदगी में ज़्यादा फर्क नहीं दिखाई देता। कमील वैसे शर्मिली लड़की है, क्लास में अपनी बात खुलकर कहने में उसे काफी समय लग जाता है। लेकिन उसका निबंध कुछ इस तरह से था।

गाय, बैल और कौवा

बरगद के पेड़ के नीचे तीन प्राणी बैठे थे – गाय, बैल और कौवा। गाय और बैल ये पति-पत्नी हैं और कौवा बैल की सफाई करता है।

बैल खुद से होकर कभी नहाता नहीं। वो गैर ज़िम्मेवार है। वो शराब पीता है। पहले ही उसने काफी रुपए गंवाए है इसलिए अब वो शराब पीता रहता है।

गाय थक गई है। आठों पहर उसे घर की साफ-सफाई करनी पड़ती है। इसलिए अब वो थकान से चूर होकर

सो रही है। सचमुच उसके लिए शादी एक सज़ा जैसी ही है। पहले-पहले रोज़ दोपहर गाय और बैल काफी दूर तक घूमने जाते थे। लेकिन अब बैल अलाल हो गया है और गाय उदास-उदास सी।

आजकल गाय कौवे के साथ उड़ जाने के सपने देखती रहती है।

प्रीतिका के निबंध के बाद जब यह निबंध पढ़ा गया तो कक्षा को इस चित्र में एक अलग दुनिया दिखाई देने लगी थी। बैल और कौवे के मिश्र विवाह पर हंसने वाले छात्र इस निबंध को सुनते हुए खासे विचारशील बन गए थे; क्योंकि प्रीतिका की कहानी की तरह ही कमील की कहानी भी शादी पर फोकस होने के बावजूद, इसमें सिर्फ कोरी कल्पनाशीलता नहीं थी बल्कि एक हकीकत से भी जुड़ाव दिख रहा था।

पहली बार जब कमील मेरे पास शब्दों के सुधार हेतु आई थी तब मैंने उससे पूछा था कि ये वाक्य तुम्हें किसने बताए? उसने बताया कि उसने कई दफा सुने हैं, रिश्तेदारों की आपसी बातचीत के दौरान वगैरह। मुझे यह जानकर थोड़ा दुख हुआ लेकिन क्या किया जाए? यह एक सच्चाई थी जिसे स्वीकार करना ही होगा। मुझे 'शारदा' नाटक की एक बार फिर याद आई – 'हम गाय की जात' कहने वाली आज भी यहां कम नहीं हैं, यह समझ में आने लगा था।

लेकिन पूरे दिन की मेहनत को सार्थक करने वाला निबंध पढ़ा था

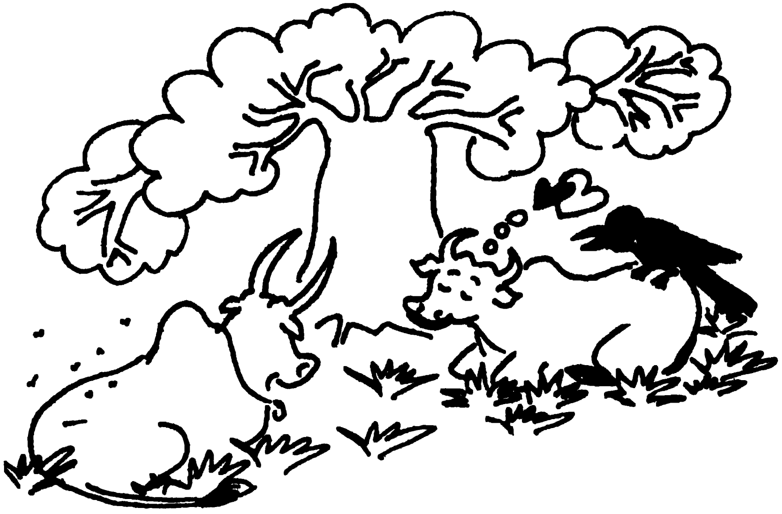

बरिंदर कौर ने। बरिंदर मेरी क्लास की एक हंसमुख लड़की है। उसका निबंध पढ़ते हुए मुझे रह-रहकर हंसी आ रही थी। बाकी सबके निबंध से उसका निबंध काफी फर्क किस्म का था क्योंकि उसने निबंध गाय की ज़ुबान में लिखा था। उसका निबंध सुनकर पूरी कक्षा ने खुलकर तालियां बजाकर उसे प्रोत्साहित किया। यहां कहानी में उस ज़िंदगी का अक्स साफतौर पर देखा जा सकता था जो यहां के इंडो-केनेडियन छात्रों, खासकर पंजाबी लड़कियों को मालूम था। लेकिन बरिंदर की किन्हीं भी हालातों में रास्ता तलाशने की आदत और हास्य प्रधान सोच भी इसमें आसानी से देखी जा सकती थी।

मैं एक गाय हूं

मेरा नाम गीता है और मैं एक गाय हूं। आज मेरा पांचवां जन्मदिन है और मेरी शादी भी आज हो रही है। मुझे शादी से बहुत डर लगता है। मेरी मां कहती है कि शादी के बाद गाय जल्दी बूढ़ी हो जाती है।

मेरे कमरे से मेरे होने वाले पति दिखाई दे रहे हैं। वे बरगद के नीचे बैठे हैं। उनके गले में सोने का हार है और उनकी कमर पर उनका पालतू कौवा बैठा हुआ है। मां कहती है कि जिन बैलों के पास कौवा होता है वे अच्छे होते हैं। दूर से मेरे होने वाले पति बहुत सुंदर दिख रहे हैं, पर दूर से तो हर चीज़ अच्छी लगती है। चाहे मां कुछ भी कहे मुझे वे बैल पसंद नहीं जिनके पास कौवे होते हैं।

आदमी को तो शादी करनी पड़ती है पर गाय बैल को नहीं। मुझे शादी नहीं करनी। न इस बैल से जिसके पास कौवा है, और न उस बैल से जिसकी कमर मेरी तरफ है।

मैं एक गाय हूं। यह मेरा जीवन है। मैं सिर्फ दूध देने के लिए और बच्चे पैदा करने के लिए नहीं बनाई गई। अब घास चरने जा रही हूं।

बरिंदर के निबंध की आधुनिक 'शारदा' क्लास में सभी को पसंद आई। मुझे भी प्रशंसनीय लगा कि 'हम गाय की जात' कहने के बावजूद गाय के संदर्भ में सहनशील, बंधन में आसानी से बंधने वाली, जैसा चाहा वैसा घुमाया...... वगैरह परम्परागत मापदंडों को उसने दरकिनार कर दिया था। यहां के खुले समाज में, तमाम आज़ादियों के बावजूद यहां के कई पंजाबी परिवार की लडकियों को मां-बाप तय करेंगे उसी के साथ शादी करनी पड़ती है। लेकिन यहां भी हालात थोड़े बदल रहे हैं। खुद को मौन प्राणी न मानते हुए, अपनी भी ज़ुबान है और इस ज़ुबान का इस्तेमाल करने की बुद्धि भी मिली है, ऐसा आजकल इधर की लड़कियां महसूस करने लगी

हैं। इस किस्म की सुधारवादी बयार बरिंदर की गाय के कान के पास से भी गुज़री हुई लगती है। अपनी मां की सोच से सहमत न होने वाली, खुद के दिल की बात को ध्यान से सुनने वाली यह गाय बाहर चरने के लिए निकलने वाली थी। 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी, आंचरा में दूध और आंखों में पानी।' इन आदर्शों पर कान न देने वाली यह गाय ही सचमुच कामधेनु है। इस गाय ने खुद से शुरू करते हुए सामाजिक सुधारों का बिगुल बजा दिया है। इस निबंध की वजह से मुझे तो बेहद खुशी हुई लेकिन देवल, फुले, आगरकर, कर्वे जैसे औरतों के असली पक्षधरों को भी खुशी हुई होती ऐसा मुझे रह-रहकर महसूस होता रहा।

विद्युल्लेखा अकलूजकर: पिछले कुछ वर्षों से कनाडा के ब्रिटिश कोलंबिया विश्वविद्यालय में, वहां के विद्यार्थियों को हिन्दी पढ़ाती हैं।

चित्रांकन: सुजाता जोशी: पुणे से प्रकाशित होने वाली पत्रिका 'मिळून साऱ्याजणी' से जुड़ाव।

यह लेख पुणे से प्रकाशित होने वाली मराठी पत्रिका 'मिळून साऱ्याजणी' के अप्रैल 2001 के अंक से लिया गया है। मिळून साऱ्याजणी पत्रिका में औरतों की ज़िंदगी पर फोकस करने वाले मुद्दों के साथ-साथ विविध सामाजिक विषयों पर लेख होते हैं।

मराठी से अनुवाद: माधव केलकर।

हृदय कैसे काम करता

जे. बी. एस. हाल्डेन

खून शरीर के एक अंग से दूसरे भाग तक पदार्थों का परिवहन करता है। अत: खून के काम-काज का अध्ययन विभिन्न अंगों के बीच उत्पादन संबंधों के अध्ययन करने जैसा है। हम इस बारे में काफी कुछ जानते हैं कि खून में उपस्थित विभिन्न पदार्थ विभिन्न कोशिकाओं में बनते हैं। दिक्कत यह है कि इस सारी जानकारी को समझाने के लिए अत्यंत पेचीदा कार्बनिक रसायन की समझ ज़रूरी है।

अधिकांश शिक्षित लोग लगभग जानते हैं कि हृदय कैसे काम करता है। यह एक खोखली मांसपेशी है और इसमें चार प्रकोष्ठ होते हैं। ऊपरी दो प्रकोष्ठों को आलिन्द (Auricles) कहते हैं। आलिंदों की दीवार पतली होती है

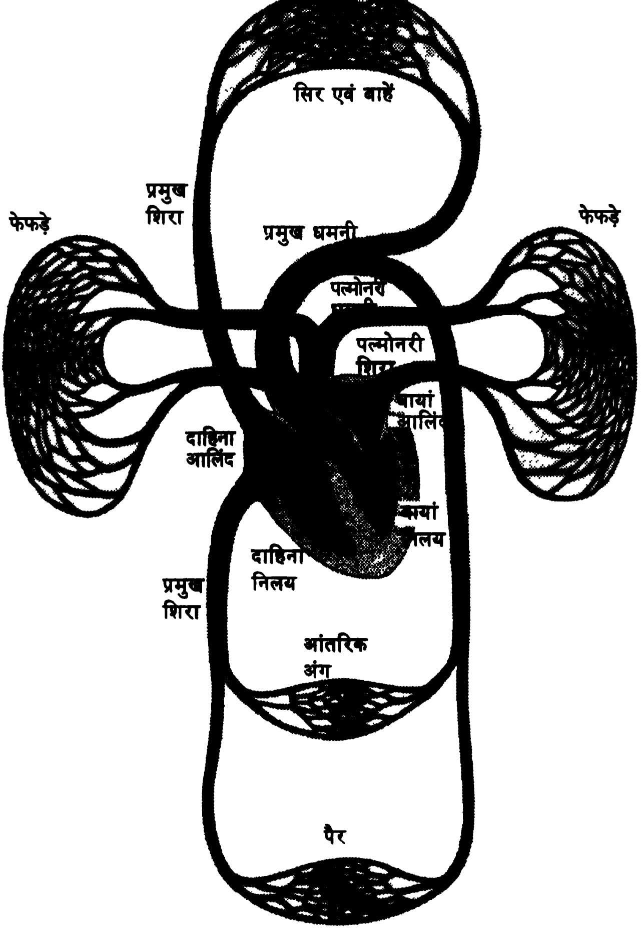

हृदय की रचना व काम काजः खून को शरीर के विभिन्न अंगों, कोशिकाओं तक ले जाने और उन कोशिकाओं द्वारा पदार्थों के आदान-प्रदान के बाद, खून को वापस फेफड़ों तक लाने वाले परिवहन तंत्र के साथ हृदय का काफी करीबी संबंध है। शरीर के विभिन्न अंगों द्वारा खून से ऑक्सीजन व अन्य पोषक पदार्थ लेने के बाद छोटी-छोटी रक्त-वाहिनियों का जाल उस खून को बड़ी शिराओं की ओर ले जाता है। बड़ी शिराएं उसे हृदय के दाहिने आलिंद तक लेकर आती हैं। दायां आलिंद इस खून को दाहिने निलय में ढकेलता है जहां

अत: ये आसानी से भर जाते हैं, किन्तु ये उच्च दबाव पर पंपिंग नहीं कर सकते। निचले दो प्रकोष्ठ निलय (Ventricles) कहलाते हैं। इनकी दीवार मोटी होती है और इसलिए इन प्रकोष्ठों में खून भरने के लिए दबाव लगाना पड़ता है। किन्तु ये खून को वापस काफी दबाव से आगे बढ़ा सकते हैं। दाएं आलिन्द में पूरे शरीर से खून आता है जबकि बाएं आलिन्द में मात्र फेफड़ों से। ये दोनों आलिन्द एक साथ संकुचित होते हैं और इनका खून निलय में प्रवेश करता है। दायां निलय खून को फेफड़ों में भेजता है तथा बायां निलय पूरे शरीर में। खून के बहाव की दिशा चार वाल्वों से निर्धारित होती है।

तो, एक पूरे चक्कर में खून की प्रत्येक कोशिका शरीर के किसी अंग (जैसे कोई मांसपेशी या मस्तिष्क) से होकर गुज़रती है। यहां यह उस ऊतक के लिए ज़रूरी ऑक्सीजन को छोड़ते हुए शिराओं के माध्यम से हृदय के दाएं भाग में पहुंचती है। यहां से इसे फेफड़ों में भेजा जाता है। फेफड़ों में रक्त कोशिकाएं पुन: ऑक्सीजन प्राप्त करती हैं और हृदय के बाएं भाग में लौटती हैं। यहां से ये एक बार फिर शरीर में भेजी जाती हैं। ये एक बार फिर उसी अंग में या किसी दूसरे अंग में पहुंचाई जा सकती हैं।

हृदय की धड़कन की एक कुदरती गति होती है। यदि इसे शरीर से बाहर भी कर दिया जाए तो भी यह इस गति से धड़कता रहता है। मस्तिष्क से आने वाली कुछ तंत्रिकाएं हृदय गति बढ़ाने का तथा कुछ तंत्रिकाएं हृदय गति कम करने का संदेश लाती हैं। विश्राम के समय हृदय 'कुदरती दर' से कम गति से धड़कता है। मस्तिष्क का एक विशिष्ट हिस्सा हृदय गति का नियमन करता है। मस्तिष्क का यह हिस्सा उस जगह होता है जहां मस्तिष्क व मेरुरज्जु का जोड़ है। सामान्य नियमन निम्नानुसार किया जाता है।

कई बड़ी धमनियों, जो बाएं निलय से निकलकर मस्तिष्क को खून पहुंचाती

से खून फेफड़ों में जाता है। फेफड़ों में महीन रक्त-नलिकाओं मे से बहते हुए खून में से गैसों का फिर से आदान-प्रदान होता है, कार्बन डायऑक्साइड बाहर निकल जाती है और ऑक्सीजन खून में शामिल हो जाती है। फेफड़ों से यह 'ताज़ा-तरीन' खून बाएं आलिंद में आ जाता है और वहां से बाएं निलय में जाता है। बाएं निलय से खून को हृदय रूपी पंप के ज़रिए ज़ोर से प्रमुख धमनी में धकेला जाता है। बड़ी धमनी से खून छोटी धमनियों के माध्यम से फिर से शरीर के विभिन्न हिस्सों तक पहुंचता है। हृदय के बार-बार संकुचन और फैलाव के कारण ही यह सारी प्रक्रिया संभव हो पाती है।

धमनियों में बह रहा खून गाढ़े रंग का, और शिराओं में मौजूद खून हलके रंग का दिखाया गया है।

हैं, में दाब-मापी उपस्थित होते हैं। ये दाब-मापी दरअसल कुछ विशिष्ट कोशिकाएं होती हैं जिनसे तंत्रिका तंतु जुड़े होते हैं। जितना ज़्यादा दबाव होगा, उतने ही ज़्यादा आवेग तंत्रिका तंतु में उत्पन्न होते हैं। इसी के अनुसार ज़्यादा संख्या में आवेग मस्तिष्क से उत्पन्न होकर हृदय तक पहुंचते हैं और उसकी गति को कम करने का संदेश देते हैं। यह एक रिफ्लेक्स क्रिया का सरलतम उदाहरण है। यह अचेतन ढंग से चलती रहती है। इसका नतीजा यह होता है कि बड़ी-बड़ी धमनियों में खून का दबाव लगभग स्थिर बना रहता है।

अब कल्पना कीजिए कि कोई अंग अपना काम करना शुरू करता है। मसलन आमाशय भोजन को मथना शुरू करता है और पाचक रस उत्पन्न करना शुरू करता है। या यह लेख लिखते हुए मेरी भुजा की मांसपेशियां काम कर रही हैं। काम करती हुई कोशिकाओं में कार्बन डाई ऑक्साइड उत्पन्न होती है। इस कार्बन डाई ऑक्साइड की वजह से उस अंग से होकर गुज़रने वाली खून की नलियां फैल जाती हैं। इस तरह से उस अंग को ज़्यादा खून मिलने से, ज़रूरी ऑक्सीजन मिल जाती है और कार्बन डाई ऑक्साइड हटा ली जाती है। परिणामस्वरूप खून धमनियों में से आसानी से गुज़रता है और दबाव कम हो जाता है।

जे. बी. एस. हाल्डेन: (1892-1964) प्रसिद्ध अनुवांशिकी विज्ञानी। विकास (Evolution) के सिद्धांत को स्थापित करने में महत्वपूर्ण योगदान। विख्यात विज्ञान लेखक। उनके निबंधों का एक महत्वपूर्ण एवं रुचिकर संकलन 'ऑन बीइंग द राइट साइज़' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। प्रस्तुत निबंध 'वॉट इज़ लाइफ' नाम के संकलन से लिया गया है।

अनुवाद: सुशील जोशी: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े हैं। स्वतंत्र रूप से विज्ञान लेखन एवं अनुवाद करते हैं।

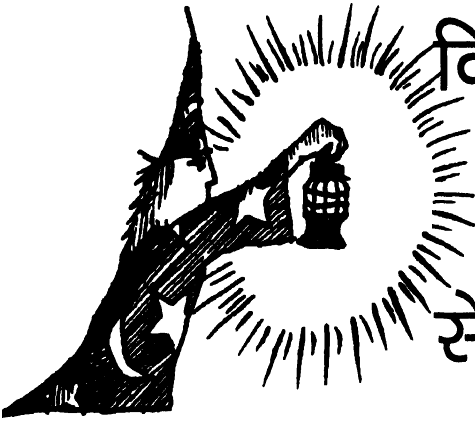

विद्युत रासायनिक सेल

अमलान दास

जब से मानव ने बिजली बनाना शुरू किया तभी से यह सवाल महत्वपूर्ण रहा है कि आखिर इसका संग्रह कैसे किया जाए। आपको शायद मालूम ही होगा कि घरों में जो ए. सी. बिजली आती है, उसे किसी भी अर्थपूर्ण मात्रा में संग्रहित कर पाना आज भी संभव नहीं है। इसलिए यह संभव नहीं कि मॉनसून के समय जब खूब पानी होता है तो काफी सारी बिजली बनाकर रख लो, जो बाद में गर्मियों में काम आए। जब जितनी बिजली बनी उसे उसी वक्त इस्तेमाल करना पड़ता है।

परन्तु जब हम किसी सेल या बैटरी से बिजली प्राप्त करते हैं तो मामला थोड़ा फर्क होता है। इससे बिजली अपनी ज़रूरत के हिसाब से जब चाहे ले सकते हैं।

थोड़ा इतिहास

इतिहास की तह में जाएं तो पता चलता है कि यूरोप में वैज्ञानिकों ने विद्युत का अध्ययन आज से करीब चार सौ साल पहले शुरू कर दिया था। तब वैज्ञानिकों के सामने एक बहुत बड़ी बाधा थी जिसके कारण वे बिजली को गहराई से जानने-समझने में असहाय थे। वह यह कि उनके पास बिजली प्राप्त करने का स्थिर और स्थाई

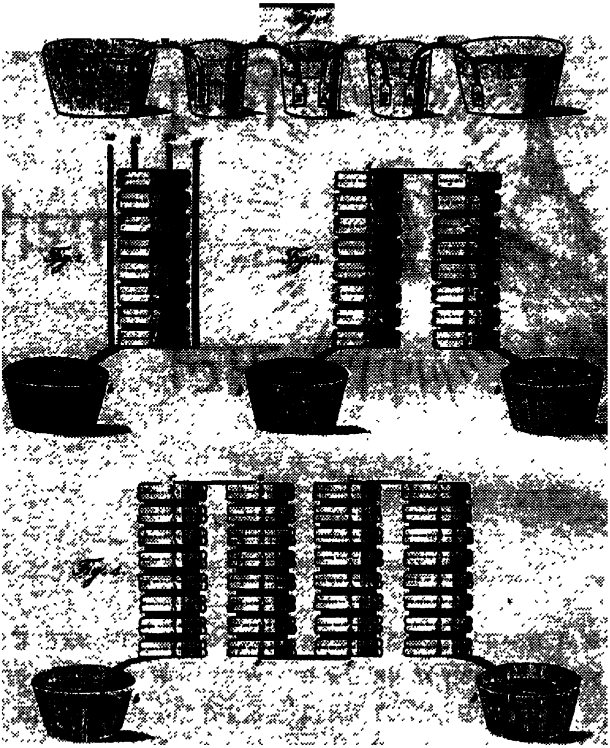

पहली इलेक्ट्रिक बैटरी: सन् 1800 की 20 मार्च को वोल्टा ने रॉयल सोसायटी ऑफ लंदन के अध्यक्ष को खत लिखकर अपनी बैटरी के बारे में जानकारी दी। यह खत रॉयल सोसायटी द्वारा प्रकाशित 'फिलॉसॉफिकल ट्रांजेक्शन्स' में छापा गया था (साथ ही ऊपर दिया गया चित्र भी)। इस चित्र के ऊपरी हिस्से में एक बैटरी बनी है। चांदी और जस्ते की पट्टियां लवण के घोल में डूबी हुई हैं और इस तरह के कई सारे सैल आपस में जुड़े हुए हैं। वोल्टा इसे 'चेन ऑफ कप्स' कहते थे।

नीचे के चित्रों में जस्ते-चांदी की बहुत-सी चकतियां एक के ऊपर एक करके रखी गईं हैं। जस्ते-चांदी की चकतियों की जोड़ियों के बीच में गीला किया गया गत्ता रखा गया है। वोल्टा ने इस पूरी संरचना को 'पाइल' कहा था। सबसे नीचे वाले चित्र में जस्ते-चांदी की चकतियों की मदद से कई पाइल जोड़कर एक बैटरी बनाई गई है।

वोल्टा की 'पाइल' से विद्युत बनाने का एक मशहूर प्रदर्शन 1801 में पेरिस में हुआ था। इस प्रदर्शन को देखने के लिए नेपोलियन भी हाज़िर हुआ था।

स्रोत न था।

सन् 1780 में इटली के जीवशास्त्री गैल्विनी ने एक दिन संयोग से एक बात देखी। उसने देखा कि अगर तांबे के हुक पर लटकी कटे हुए मेंढक की टांगें किसी दूसरी धातु से छू जाती हैं तो वह ऐसे झटका मारती हैं मानो उनमें फिर से जान आ गई हो। प्रयोग को कई बार दोहराकर गैल्विनी ने यह निष्कर्ष निकाला कि मेंढक की टांगें बिजली बहने के कारण झटका मारती हैं। उसने यह सिद्धांत पेश किया कि हर जीव में बिजली होती है और यही बिजली उनके जीवन का मूल स्रोत है।

कुछ और वैज्ञानिक अलग-अलग जानवरों के साथ ऐसे ही प्रयोग करने में जुटे थे। उनमें से एक वैज्ञानिक इटली के ही एलेसांद्रो वोल्टा भी थे। वोल्टा ने पाया कि जब मेंढक की टांगों को तांबे के बजाय लोहे के हुक पर टांग कर लोहे की छड़ से छुलाया जाता है तब मेंढक की टांग झटका नहीं मारती है।

वोल्टा इस नतीजे पर पहुंचे कि टांगों को दो अलग-अलग धातुओं से छुलाने पर मेंढक की टांगों में बिजली ज़रूर बहती है पर यह बिजली मेंढक के अपने शरीर की बिजली नहीं बल्कि किसी अन्य क्रिया से उत्पन्न बिजली होती है।

वोल्टा ने मेंढक की टांगों की जगह अलग-अलग तरल लेकर यह प्रयोग कई बार दोहराया तो समझ में आया कि बिजली पैदा करने के लिए किसी जानवर का शरीर ज़रूरी नहीं है। वह तो दो विभिन्न धातुओं को एक खास द्रव में रखने से भी पैदा हो जाती है।

वोल्टा ने इन प्रयोगों को करते-करते बिजली का एक स्थिर स्रोत खोज निकाला था। उसने दुनिया का पहला सेल बनाया और सन् 1800 में उसे दुनिया के सामने पेश किया।

* * *

आज की दुनिया में बच्चों के खिलौनों, घड़ी, केमरे, मोबाइल फोन आदि सबमें सेल होते हैं जो इन उपकरणों को सुचारु रूप से चलाते हैं। यह सब देखकर सेल क्या है, उससे बिजली प्राप्त कैसे होती है? अलग-अलग धातुओं के इलेक्ट्रोड लेने से क्या फर्क दिखता है? ऐसे कई सारे सवाल उठने लगते हैं। इनमें से कुछ सवालों के जवाब तो हम अगले अंक में देंगे। इस बार कुछ मोटी-मोटी बातों के साथ आप अपने हाथों से एक सेल बनाकर देख सकते हैं और साथ ही सेल से एल. ई. डी. भी जलाकर देख सकते हैं।

आमतौर पर हर एक सेल की बनावट लगभग एक जैसी होती है। किसी भी सेल में दो इलेक्ट्रोड तथा एक विलयन (इलेक्ट्रोलाइट) होना आवश्यक है। इलेक्ट्रोड धातुओं से बने

होते हैं जो कि बाहरी परिपथ के साथ विलयन का संपर्क बनाए रखते हैं।

नींबू के रस से सेल

चलिए सेल बनाने की शुरुआत करें। सेल बनाने के लिए हमें दो इंजेक्शन की शीशी, तांबे के मोटे तार का तीन से.मी. लंबा टुकड़ा, जस्ते की पट्टी, नींबू का रस, एक एल.ई.डी. तथा कुछ तार के टुकड़े चाहिए।

तांबे के दोनों सिरों को लगभग 1 से.मी. तक रेगमाल कागज़ द्वारा अच्छी तरह से घिस लेना ज़रूरी है। यह एक इलेक्ट्रोड हो गया। किसी खराब सेल को तोड़कर धातु की पट्टी (जो कि जस्ते की बनी होती है) निकाल लो। इस पट्टी का दो मि.ली. चौड़ा एवं 3 से.मी. लंबा टुकड़ा काट लो। यह दूसरा इलेक्ट्रोड होगा।

चित्र में दर्शाए गए तरीके के अनुसार तांबे के तार एवं जस्ते के टुकड़ों, दोनों को इंजेक्शन की शीशी के रबर के ढक्कन में फंसा दो। (ध्यान रहे तांबे का तार एवं जस्ते का टुकड़ा एक दूसरे से कहीं छू न जाएं)। अब इंजेक्शन की बॉटल में नींबू का रस डालो और उसके बाद ढक्कन बंद कर दो। यह हो गया सेल तैयार। अगर आप मल्टीमीटर से वोल्टेज नापें तो आपको लगभग 0.9 वोल्ट मिलेगा। यानी इस सेल की वोल्टेज बहुत कम है।

हम चाहते हैं सेल से बल्ब या कम से कम एल.ई.डी. जला पाएं। चूंकि एल.ई.डी. को कम वोल्टेज चाहिए इसलिए पहले एल.ई.डी. जलाने की कोशिश करेंगे। इसके लिए ऊपर बताई विधि से एक और ऐसा ही सेल बनाना होगा। फिर एक तार लेकर एक ढक्कन के तांबे के तार के साथ, दूसरे ढक्कन के जस्ते के टुकड़े को जोड़ दो – जैसा

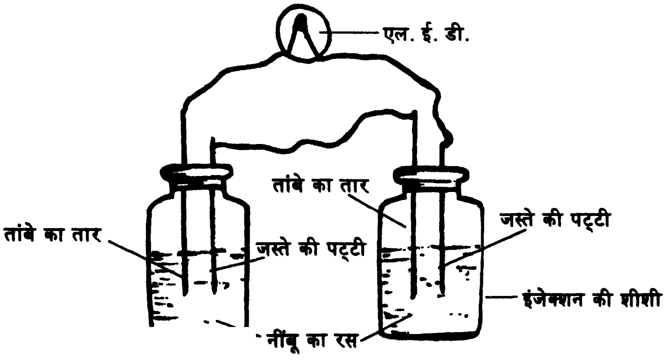

नींबू रस से एल.ई.डी. जलाना

कि चित्र में दिखाया गया है। दोनों सेल श्रेणी क्रम में जुड़ गए हैं।

अब एक एल.ई.डी. लो। इसमें दो तार लगे होंगे। उसके एक तार के सिरे को एक शीशी में लगे जस्ते से छुलाओ और साथ ही एल.ई.डी. में लगे दूसरे तार को दूसरी शीशी के तांबे के तार से छुलाओ। क्या एल.ई.डी. जल उठा?

अगर नहीं, तो एल.ई.डी. को उल्टा करके फिर से उसी तरह जोड़ो। अब तो एल.ई.डी. ज़रूर जल उठा होगा। अब इस सेल से बल्ब जलाने की कोशिश करें तो? इस सेल में वोल्टेज तो करीब दो वोल्ट के आस-पास है जो कि अच्छा-खासा है, परन्तु बल्ब जलाने के लिए वोल्टेज से ही काम नहीं चलता, परिपथ में करंट भी अच्छा होना चाहिए। इस सेल में करंट बढ़ाने के लिए तांबे तथा जस्ते के लंबे-चौड़े इलेक्ट्रोड लेने पड़ेंगे। उससे करंट बढ़ेगा तथा बल्ब भी जल सकता है।

उपरोक्त तरीके से हम इमली के रस, टमाटर के रस आदि का इस्तेमाल करके भी सेल बनाकर एल.ई.डी. जलाकर देख सकते हैं। कई लोग तरह-तरह के फलों के रस के साथ अलग-अलग धातुओं के इलेक्ट्रोड चुनकर एल.ई.डी., बल्ब तथा केल्कुलेटर चलाकर देखते हैं।

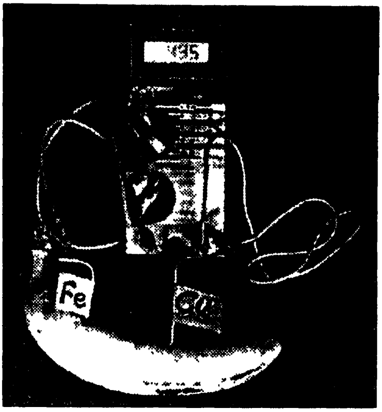

नींबू-केले से सेल: केले में आयरन और कॉपर के इलेक्ट्रोड लगाकर मल्टी मीटर से विद्युत धारा को नाप सकते हैं।
वैसे आप दो-तीन नींबुओं में दो-दो इलेक्ट्रोड लगा, उनकी सीरिज़ बनाकर इसे केल्कुलेटर से जोड़कर केल्कुलेटर भी चला सकते हैं।

ऊपर वाला प्रयोग सीधे नींबू लेकर भी किया जा सकता है परन्तु प्रयोग करने के पहले नींबू को थोड़ा-सा रगड़ना पड़ेगा। अलग-अलग फलों के रसों से यह प्रयोग करके भी देखा जा सकता है। और हर बार अलग अलग धातु लेकर भी प्रयोग किया जा सकता है।

सेल संबंधी आपके कोई सवाल हों तो हमें ज़रूर बताएं। वैसे अगली कड़ी में सेल के बारे में कुछ और चर्चा होगी ही।

अम्लान दास: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से संबद्ध। होशंगाबाद में रहते हैं।

विसरण और परासरण

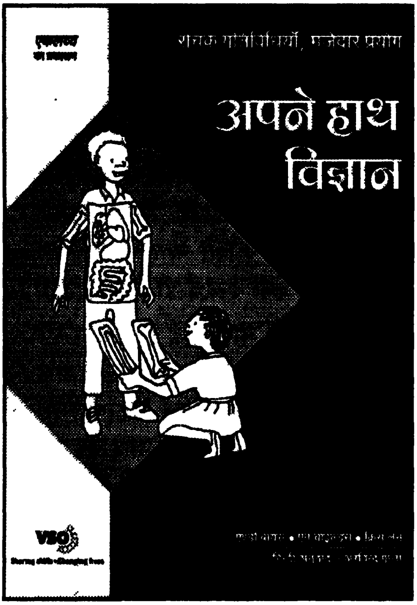

कक्षा में विज्ञान पढ़ाना एक चुनौती भरा काम होता है। प्रयोग और गतिविधियों की मदद से विज्ञान पढ़ाया जा सकता है लेकिन कई समस्याएं आ खड़ी होती हैं। जैसे – पाठ्य पुस्तकों में पर्याप्त प्रयोगों का अभाव, शिक्षकों को गतिविधियों की जानकारी नहीं होती, प्रयोगशाला के उपकरण महंगे होने की वजह से बच्चों को नहीं दिए जा सकते। इन सबका मिलाजुला असर यह होता है कि बच्चों को पढ़ाई नीरस लगने लगती है।

शिक्षकों की इन्हीं सब अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए वॉलंटरी सर्विसेज़ ओवरसीज़ ने दुनिया भर के शिक्षकों द्वारा किए गए प्रयोगों और गतिविधियों का इस पुस्तक के रूप में संकलन किया है।

पिछले अंक में हमने ध्वनि के कुछ प्रयोग देखे थे। इस बार हम विसरण और परासरण से संबंधित कुछ प्रयोगों की चर्चा करेंगे एवं उन्हें समझने का प्रयास करेंगे।

विसरण एवं परासरण

* विसरण या बिखरना वह प्रक्रिया है जिसमें परमाणु सघन क्षेत्र से विरल की ओर जाते हैं।
* एक अर्ध-पारगम्य झिल्ली में से केवल, छोटे परमाणु ही गुज़र सकते हैं।
* अगर कम सांद्र और अधिक सांद्र घोल के बीच एक अर्ध-पारगम्य झिल्ली होगी, तो पानी का रिसाव कम से अधिक सांद्रता की ओर होगा। इस प्रक्रिया को परासरण कहते हैं। परासरण को विसरण का ही एक विशिष्ट रूप समझा जा सकता है। वैसे तो सभी परमाणुओं में तब तक गतिशीलता बनी रहती है जब तक झिल्ली के दोनों ओर सांद्रता एक समान नहीं हो जाती है, परंतु पानी के छोटे परमाणु ही अर्ध-पारगम्य झिल्ली में से गुज़रने में सफल हो पाते हैं।

विसरण का मॉडल

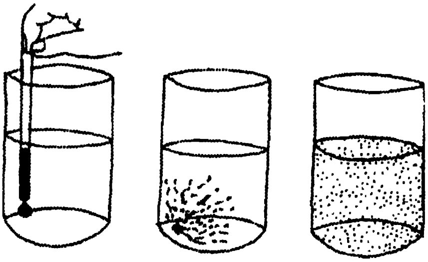

आवश्यक सामान
- एक गिलास साफ पानी
- स्याही
- एक सोड़ा-स्ट्रॉ या पिपेट

एक गिलास पानी की तली में, स्याही की एक बूंद को, सावधानी से रखें। धीरे-धीरे स्याही पूरे गिलास में फैल जाएगी। अब पूरे पानी में स्याही का रंग और सांद्रता एक जैसी हो जाएगी।

अर्ध-पारगम्य झिल्लियां

आवश्यक सामान
- एक कांच की चौड़े मुंह की बोतल
- पारदर्शी प्लास्टिक की थैली
- छोटे मोती या पत्थर
- बड़े मटर के दाने या राजमा

– जाली (जो छोटे मोतियों को निकलने दे)

मोतियों और बीजों को मिलाकर बोतल में डालें। बोतल के मुंह पर जाली और प्लास्टिक की थैली को बांधें। जब आप इस उपकरण को हिलाएंगे तब केवल मोती (छोटे परमाणु) ही जाली (अर्ध-पारगम्य) में से बाहर निकल पाएंगे।

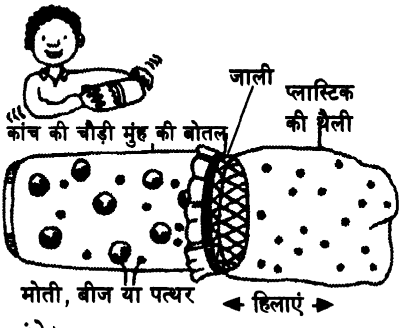

झिल्ली के साथ तुलना

जाली से बने थैले की तुलना एक अर्ध-पारगम्य झिल्ली से की जा सकती है। छोटी चीज़ें, थैले के छेदों में से, बाहर निकलकर गिर जाएंगी, परंतु बड़ी चीज़ें अंदर टिकी रहेंगी। ऐसी जाली अर्ध-पारगम्य होगी।

अर्ध-पारगम्य झिल्ली के काम को दिखाना

आवश्यक सामान

– एक कांच का बर्तन
– पिपेट या सोड़ा-स्ट्रॉ
– मक्के का मांड और पानी से भरी एक पारदर्शी प्लास्टिक की थैली
– आयोडीन का घोल

सभी प्लास्टिक की थैलियां तो नहीं, परंतु कुछ थैलियां अवश्य अर्ध-पारगम्य होती हैं। आपको पहले थैली के इस गुण की जांच करनी पड़ेगी। खेलने वाले गुब्बारे अक्सर अर्ध-पारगम्य होते हैं। आप पाएंगे कि अंत में आयोडीन, मक्के के मांड को नीला/काला बना ही देगी। यानी आयोडीन

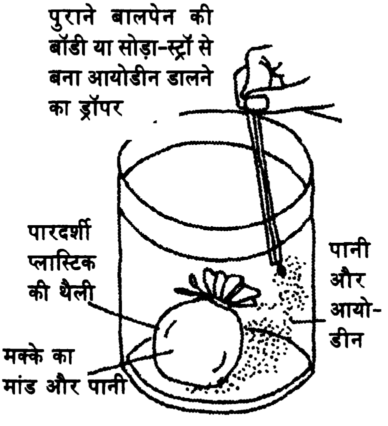

अर्ध-पारगम्य झिल्ली में से पार हो चुका है। लेकिन बर्तन का पानी पहले जैसा साफ ही रहेगा। इसका मतलब यह निकलेगा कि थैली में से मांड बाहर नहीं निकला।

परासरण – अंडे के साथ

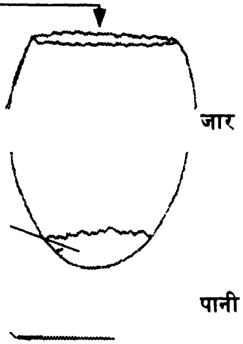

आवश्यक सामान

– अंडे का बाहरी खोल
– सांद्र नमक का घोल
– एक जार
– पानी

अंडे के बाहरी खोल के निचले सिरे से, कठोर परत को, सावधानी से हटा दें। अब नीचे केवल अंदर वाली झिल्ली रह जाएगी। फिर अंडे के खोल को, लगभग आधी ऊंचाई तक, नमक के घोल से भरें। खोल को, पानी से भरे जार में, इस प्रकार रखें जिससे कि बाहर पानी का स्तर झिल्ली से ऊपर हो। कुछ घंटों तक ऐसे ही रहने दें। आप पाएंगे कि अंडे के अंदर पानी का स्तर कुछ ऊंचा उठ जाएगा। पानी, परासरण की प्रक्रिया के कारण ही, झिल्ली में से होकर अंडे के अंदर आया होगा।

छात्रों से कहें कि वे नमक के स्थान पर, शक्कर का घोल प्रयोग करें और और अपने नतीजों पर चर्चा करें। अंडे के साथ-साथ जार में भी अगर नमक का घोल डाल दिया जाए तो क्या होगा? इस बात पर शोध करें कि अगर अंडे के बाहर और अंदर नमक के घोल की अलग-अलग सांद्रता हो, तो क्या होगा?

मृत और जीवित झिल्लियों में परासरण

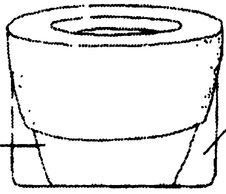

आवश्यक सामान

– कंदमूल, पपीता या आलू
– सांद्र शक्कर का घोल
– एक बर्तन
– पानी

कंदमूल या कच्चे पपीते के दो भाग करें और एक भाग को उबाल लें। ठंडा होने के बाद, कंद के दोनों हिस्सों को बीच से काटकर खोखला करें और एक मोटी दीवार वाले कटोरों का रूप दें। दोनों में शक्कर का घोल भरें। दोनों कटोरों की निचली सतहों को छीलें और उन्हें एक घंटे के लिए पानी के बर्तन में रखें। पानी केवल कच्चे कंदमूल से बने कटोरे में रिसकर अंदर आएगा। अगर पानी दोनों कंदमूलों के कटोरों में भर आता है तो आपको दूसरे कंद को कुछ और देर तक उबालना होगा।

उबालने से कंद की अर्ध-पारगम्य झिल्ली पर क्या प्रभाव पड़ता है? छात्रों से इस विषय पर चर्चा करें।

छात्रों से पूछें कि किस कंद में जीवित कोशिकाएं हैं? अगर कंद को नहीं छीला जाए तो क्या होगा?

पहरेदार कोशिकाओं में परासरण

आवश्यक सामान

– दो खिंचे हुए लम्बे गुब्बारे
– चौड़ा सेलो-टेप
– रबर का छल्ला

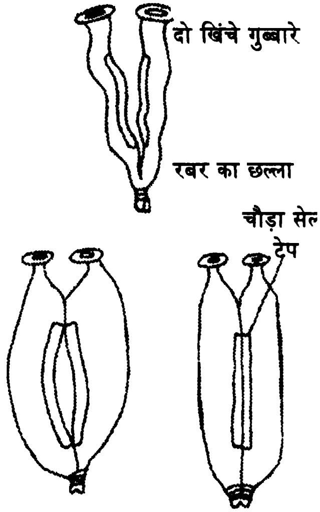

फूले गुब्बारे, फूली कोशिकाएं और खुला स्टोमा।

कुछ हवा निकलते ही कोशिकाएं नरम पड़ जाती हैं और स्टोमा बंद हो जाता है।

परासरण के दबाव में बदलाव के कारण पहरेदार कोशिकाएं या तो फूल जाती हैं या फिर नरम होकर पिचक जाती हैं। इसे सूक्ष्मदर्शी से स्पष्ट देखा जा सकता है और दो गुब्बारों का मॉडल बनाकर समझा जा सकता है।

दोनों गुब्बारों में एक ओर, चित्र में दिखाए अनुसार, एक सेलो-टेप चिपकाएं। यहां गुब्बारे कोशिकाएं हैं और टेप से बना भाग गैसों आदि के आदान-प्रदान के लिए बना मुंह। जब दोनों गुब्बारे पूरी तरह फूले होंगे तो टेप से बनने वाला मुंह खुल जाएगा। परंतु

गुब्बारों में से थोड़ी-सी हवा निकलने से 'पहरेदार कोशिकाएं' नरम पड़ जाएंगी और मुंह या छेद बंद हो जाएंगे।

रसोईघर में परासरण

आवश्यक सामान

- सूखे बीज या किशमिश
- एक बर्तन
- पानी
- नमक का घोल

जब सूखे अंजीर, किशमिश, मटर, लोबिया और राजमा के बीजों को पानी में भिगोया जाता है तो वे पानी सोखने के कारण फूल जाते हैं।

क्या नमक के घोल में भी ऐसा ही होगा? छात्रों से कहें कि वे पता लगाएं।

क्या नमक के घोल की सांद्रता से बीजों के फूलने पर कुछ असर पड़ेगा?

सब्जियां पकाने से पहले कुछ लोग, कटी हुई सब्जी पर नमक क्यों छिड़कते हैं?

अपने हाथ विज्ञान

मूल्य: 60 रुपए

कुल पृष्ठ: 128, आकार: ए-4

मंगवाने का पता:

एकलव्य
ई-7/453 एच.आई.जी., अरेरा कॉलोनी,
भोपाल म. प्र. 462016
फोन: 0755 - 463380
ईमेल: eklavyamp@vsnl.com

एकलव्य के प्रकाशन

एकलव्य द्वारा प्रकाशित पत्रिकाएं - संदर्भ, चकमक, स्रोत एवं अन्य किताबें कुछ चुनिंदा शहरों में उपलब्ध हैं।

* नई दिल्ली	**पीपुल ट्री** 8, रीगल बिल्डिंग, संसद मार्ग, नई दिल्ली- 110 001 फोन: 3734877
	जोड़ो ज्ञान 39/13, ग्राउण्ड फ्लोर, ओल्ड राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली, फोन: 5821061
* मुंबई	**कॉमेट मीडिया फाउंडेशन** टोपीवाला लेन स्कूल, लेमिंग्टन रोड, मुंबई- 400 007, फोन: 3869052
	नव निर्मिति डिस्कवर इट, रवि निवास, गणेश नगर, क्वेरी रोड, भांडुप (पश्चिम) मुंबई- 400 078, फोन: 5690145
* पुणे	**यूरका साइस सन्टर** 1473, सदाशिव पेठ, एस.पी.कॉलेज के सामने, तिलक रोड, पुणे- 411 030, फोन: 4472586
लखनऊ	**जनचेतना** डी-68, निराला नगर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश- 226 020
	दस्तावेज़ प्रकाशन प्रथमतल, गंज प्लाज़ा, मस्जिद लेन, 42 हजरत गंज, लखनऊ- 226 001
	बी.जी.वी.एस. बी-8, ब्रम्हपुरी लखनऊ (उ.प्र.) 226 016, फोन: 353617
	यूनीवर्सल बुक सेलर्स 82, हजरत गंज, लखनऊ- 226 001, फोन: 225894
इलाहाबाद	**व्हीलर बुक शॉप** 19, एम.जी. मार्ग, इलाहाबाद- 211 001, फोन: 624106
देवघर	**जुड़ाव** 52, बीघा मधुपुर, जिला- देवघर, बिहार- 815 353

✱ रांची		**अखड़ा** शास्त्री नगर, कांके रोड, रांची, झारखंड, फोनः 230325
✱ बीकानेर		**सर्जना** सांखला प्रिंटर्स परिसर, भवन नगर, बीकानेर- 334 001, फोनः 521200
✱ जयपुर	-	**लोकायत प्रकाशन** 883, लोधों की गली, जयपुर- 302 004, फोनः 600912
✱ अहमदाबाद	-	**सौरभ पुस्तक भंडार** फर्स्ट फ्लोर, केलीकोडोम, रिलीफ रोड, अहमदाबाद- 380 001, फोनः 2131230
	-	**सौरभ पुस्तक भंडार** बी-7, अरिहंत नगर, विश्राम नगर के सामने, अहमदाबाद, फोनः 7475097
	-	**विजय मेग्ज़ीन वर्ल्ड**, कल्याण भुवन,रुपम सिनेमा के पास, रिलीफ रोड़, अहमदाबाद, फोन नं. 5356479
✱ मेहसाना	-	**पीयूष मेग्ज़ीन एजेंसी** 6/डी, शिवशक्ति अपार्टमेंट, लाखावाड़ी, भागोल मेहसाना- 384001
✱ बड़ौदा	-	**शिशु मिलाप** 1, श्रीहरि अपार्टमेंट, एक्सप्रेस होटल के पीछे, अलकापुरी बड़ौदा- 300 007, फोनः 342539
✱ इंदौर	-	**जैनसन बुक शॉप** 33, बक्षी गली, राजवाड़ा, इन्दौर (म.प्र.), फोनः 538787
✱ जबलपुर	-	**बाल साहित्य भंडार** 144/145, अवधपुरी, ग्वारीघाट रोड, जबलपुर म.प्र. 482 008
✱ बेंगलोर	-	**सूत्रधार** 599, 17-ए क्रॉस, 7 मेन, इंदिरा गांधी, स्टेज II बैंगलोर- 560 038, फोनः 5288545

एकलव्य के प्रकाशन में रुचि रखने वाले व्यक्ति, पुस्तक विक्रेता
अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें:

एकलव्य
ई–7/453, एच.आइ.जी. , अरेरा कॉलोनी,
भोपाल, मध्य प्रदेश, पिन: 462016   फोन: 0755–463380
ई–मेल: eklavyamp@vsnl.com

ज़रा सिर खुजलाइए

अंक 37 (अप्रैल-मई 2001) में पूछे गए सवाल में आपको एक आकृति दी गई थी और कहा गया था कि इस आकृति पर कैंची से इस तरह से एक कट लगाना है कि यह आकृति एक जैसे आकार वाली दो जुड़वां आकृतियों में बंट जाए।

इस सवाल का हल और सही जवाब देने वाले पाठकों के नाम इस तरह से हैं:

दिनेश कुमार बिनौले, ग्राम सतवास, देवास, म.प्र.। रमेश चंद्र, ग्राम नलवा, हिसार, हरियाणा। देवांशु वत्स, सुपौल, बिहार। टीकाराम पटेल, ग्राम पेंडरुवां, जांजगीर, छत्तीसगढ़। अनीता सक्सेना, सिंगरौली, म.प्र.। शत प्रतीक, दयालबाग, आगरा, उ.प्र.। अलका कालरा, रमेश नगर, नई दिल्ली। छाया दुबे, उज्जैन, म. प्र.।

इस बार का सवाल:

सीताराम अपने बाग में लगाने के लिए अमरुद के 25 पौधे लेकर आया। अपने माली गंगाराम से उसने कहा कि ये पौधे 12 कतारों में इस प्रकार लगाओ कि हर कतार में 5 पौधे हों। गंगाराम सोच में पड़ गया कि क्या करें? क्या आप गंगाराम की मदद कर सकते हैं?

वैसे हम आपको बता दें कि इस सवाल के एक से ज़्यादा हल हैं – आसान भी और मुश्किल भी। इसलिए आप चाहें तो एक से ज़्यादा तरीके सुझाकर गंगाराम की मदद कर सकते हैं।

अपने जवाब जल्द-से-जल्द हमें इस पते पर भेजिए:

संदर्भ
द्वारा एकलव्य
कोठी बाज़ार, होशंगाबाद, म. प्र.
पिन: 461001

गुरुत्व की बारीक बातें

चूंकि समयनुमा कणों के लिए पलायन वेग की लक्ष्मण रेखा का अस्तित्व है, इसलिए फोटॉन के लिए भी ऐसी कोई दहलीज़ होनी चाहिए। सामान्य कणों की तरह फोटॉन लौट नहीं सकते। उन्हें किसी गुरुत्व पिण्ड से जोड़े रखने का एकमात्र तरीका यह है कि उन्हें एक अत्यन्त सघन सतह से बाहर न फैलने दिया जाए। चूंकि फोटॉन किसी भी भौतिक सूचना के प्रसार की सीमित अधिकतम गति के द्योतक हैं, इसलिए ऐसी

नरेश दधीच

पिछले अंक में हम बात कर रहे थे कि मुक्त कण की गति वक्र ज्यामिति की 'सरल रेखा' से परिभाषित होती है। गौरतलब है कि एक गोले की सतह पर 'सरल रेखा' वह वृत्त होता है जिसका केन्द्र गोले का केन्द्र हो। अर्थात् गुरुत्व पूरी तरह दिक्काल (स्पेस-टाइम) की ज्यामिति में अंगीकार हो चुका है और उसी की वक्रता से परिभाषित होता है। इससे

हम आइंस्टाइन के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत पर पहुंचते हैं, जिसका नाम है सापेक्षता।

हर चीज़ का अंत

किसी सिद्धांत के ध्वस्त हो जाने यानी ब्रेकडाऊन को एक सुंदर नाम दिया गया है – विशिष्टता (Singularity)। यह वह स्थिति होती है जब किसी सिद्धांत के भौतिक मापकों का मूल्य अनंत हो जाता है और तब वह सिद्धांत इन मूल्यों के लिए सही नहीं रह जाता। सामान्य सापेक्षता सिद्धांत के संदर्भ में 'विशिष्टता' पर न सिर्फ दिक्काल (स्पेस-टाइम) की वक्रता बल्कि घनत्व व दबाव भी खत्म हो जाएंगे। दिक्काल की वक्रता अनंत होने का मतलब है स्पेस-टाइम की संरचना तहस-नहस हो जाना। सामान्य सापेक्षता की 'विशिष्टता', न सिर्फ सामान्य सापेक्षता बल्कि हर चीज़ के अंत की द्योतक है। दिक्काल (स्पेस-टाइम) की उपयुक्त पृष्ठभूमि के बगैर कोई अन्य भौतिक सिद्धांत या संरचना चल नहीं पाएगी। यानी गुरुत्वाकर्षण के समान इसकी 'विशिष्टता' भी सार्वभौमिक है।

आगे की दिशाएं

गुरुत्वाकर्षण एक सार्वभौमिक अंतर्क्रिया है। यानी अन्य बलों के समान यह एक बल नहीं बल्कि ब्रह्मांड की स्पेस-टाइम संरचना का एक गुणधर्म है। सवाल यह है कि हम दिक्काल (स्पेस-टाइम) की संरचना में उस 'विशिष्टता' को कैसे संबोधित करें जो न सिर्फ दिक्काल (स्पेस-टाइम) के ढांचे के नाकाम होने की, परन्तु समस्त भौतिक घटनाओं के खात्मे की द्योतक है। यह हर चीज़ के अंत की द्योतक है और क्या इस सवाल का उत्तर हमें एक सर्वसमावेशी सिद्धांत दे सकता है? स्ट्रिंग सिद्धांत के प्रवर्त्तक यही दावा करते हैं।

स्ट्रिंग सिद्धांत एक प्रस्ताव है जो सामान्य सापेक्षता को अपने में समाने का दावा करता है। इसके अंतर्गत समस्त बलों के एकीकरण, गुरुत्व बल के क्वान्टमीकरण और ब्रह्मांड में पदार्थ की उत्पत्ति की एक विहंगम दृष्टि प्रस्तुत करने के प्रयास हो रहे हैं। यह सब कुछ दस आयामों में होगा। आकाश के अतिरिक्त आयाम अत्यन्त सघन हैं तथा ये मात्र उच्च ऊर्जा के संदर्भ में ही प्रकट होंगे। सामान्य सापेक्षता इस सिद्धांत का निम्न ऊर्जा संस्करण होगी। अलबत्ता 10 आयामों से 4 आयाम तक पहुंचने के लिए कोई प्राकृतिक व एकमेव मार्ग नहीं है।

दूसरा तरीका अभय अष्टेकर व उनके सहयोगियों द्वारा प्रस्तुत कैनॉनिकल क्वांटम गुरुत्वाकर्षण का है। स्पेस-टाइम की ज्यामिति को किस तरह ढाला जाए कि वह क्वान्टमीकरण के लिए उपयुक्त हो जाए? दरअसल

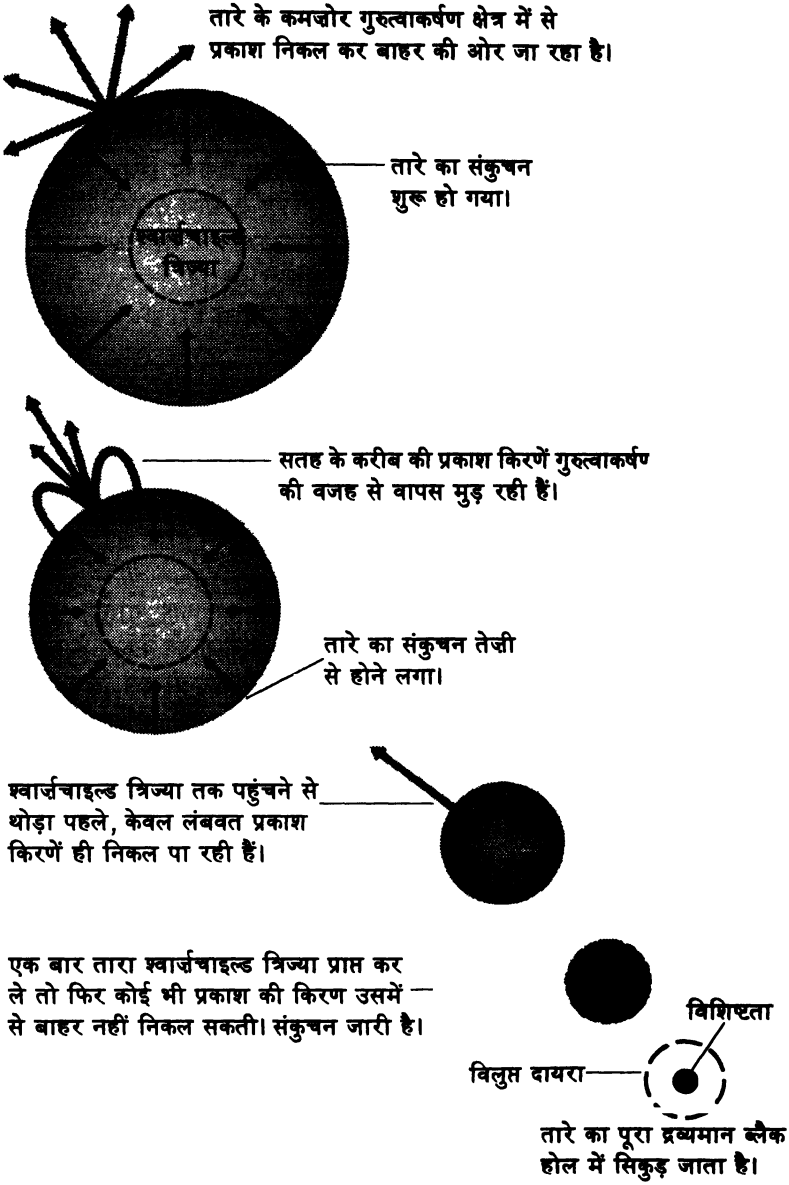
तारे के कमज़ोर गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र में से प्रकाश निकल कर बाहर की ओर जा रहा है।
तारे का संकुचन शुरू हो गया।
सतह के करीब की प्रकाश किरणें गुरुत्वाकर्षण की वजह से वापस मुड़ रही हैं।
तारे का संकुचन तेज़ी से होने लगा।
श्वार्ज़चाइल्ड त्रिज्या तक पहुंचने से थोड़ा पहले, केवल लंबवत प्रकाश किरणें ही निकल पा रही हैं।
एक बार तारा श्वार्ज़चाइल्ड त्रिज्या प्राप्त कर ले तो फिर कोई भी प्रकाश की किरण उसमें से बाहर नहीं निकल सकती। संकुचन जारी है।
विशिष्टता
विलुप्त दायरा
तारे का पूरा द्रव्यमान ब्लैक होल में सिकुड़ जाता है।

दिक्काल (स्पेस-टाइम) की ज्यामिति का ही क्वांटमीकरण करना है। दिक्काल (स्पेस-टाइम) की संरचना मूलतः निरंतरता पूर्ण है। उसे खण्डित स्वरूप देने के लिए नवीन गणितीय औज़ार व संरचनाएं विकसित की जा रही हैं। ये लोग वास्तव में क्वांटम ज्यामिति विकसित कर रहे हैं। यह प्रस्ताव चिर-परिचित 4-आयामों की सीमाओं के अंदर ही है।

दोनों ही तरीकों को लगभग बराबर सफलता मिली है। मसलन श्याम विवर यानी ब्लैक-होल की एण्ट्रॉपी को समझने में दोनों ही कुछ हद तक सफल रहे हैं। परन्तु अभी दोनों का काफी विकास होना शेष है। स्ट्रिंग सिद्धांत को कण-भौतिकविदों के एक व्यापक समूह का समर्थन प्राप्त है, जबकि कैनॉनिकल क्वांटमीकरण के सिद्धांत का विकास चंद सापेक्षतावादी कर रहे हैं। दोनों सिद्धांत काफी अलग-अलग हैं।

स्ट्रिंग सिद्धांत में फील्ड सिद्धांत की तकनीकों व अवधारणाओं का उपयोग किया जाता है जबकि कैनॉनिकल क्वांटमीकरण में ज्यामिति संरचनाओं का। दिक्काल (स्पेस-टाइम) के अंतिम सिद्धांत की ओर बढ़ते हुए इन्हें देर सबेर परस्पर मिलना होगा। बहरहाल, इतना तो निश्चित है कि हमें एक नए सिद्धांत की ज़रूरत तो है। वह स्ट्रिंग सिद्धांत हो, या कैनॉनिकल क्वांटमीकरण का सिद्धांत, या कुछ और

आइए अपने अतीत के अनुभव की नज़र से भविष्य के अज्ञात को देखें। न्यूटन से आइंस्टाइन तक मार्गदर्शक शक्ति प्रकाश, उसका स्थिर वेग तथा गुरुत्वाकर्षण के साथ उसकी अंतर्क्रिया थी। गुरुत्वाकर्षण के साथ अंतर्क्रिया के लिए ज़रूरी था कि दिक्काल (स्पेस-टाइम) में वक्रता हो। इन सरल तथ्यों के आधार पर हमने तर्क किया कि गुरुत्वाकर्षण से सामान्य कणों को त्वरण मिलने के अलावा, आकाश में वक्रता उत्पन्न होनी चाहिए ताकि फोटॉन गुरुत्वाकर्षण को महसूस कर सकें।

चूंकि त्वरण एक क्रमिक रूप (Gradient) से उत्पन्न होता है, इसलिए स्थिर विभव का कोई गतिज प्रभाव नहीं होता। आकाश की वक्रता के ज़रिए फोटॉन प्रत्यक्ष रूप से इस विभव को महसूस करते हैं और इसलिए वे इसके मान के प्रति संवेदी होते हैं। इसलिए स्थिर विभव को अनदेखा नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह गैर-शून्य वक्रता उत्पन्न करता है। अर्थात् जिस विभव को न्यूटन के सिद्धांत में निरपेक्ष (परम) रूप में निकाला गया था, उसे आइंस्टाइन का सिद्धांत सापेक्ष रूप में देखता है। पुराने से नए सिद्धांत की यात्रा सदैव एक संश्लेषण होती है। यह दरअसल वही पुराना न्यूटनीय विभव है जिसका शून्य अनंत में निर्धारित कर दिया गया है। यह

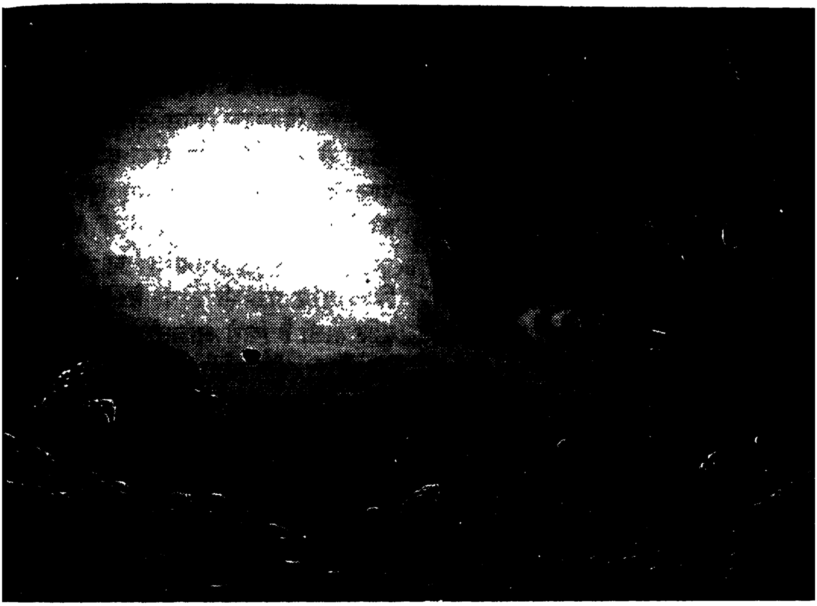

कल्पना की उड़ानः ब्लैक होल की तलाश के लिए जिन विभिन्न आकाशीय पिंडों का अध्ययन किया जा रहा है उनमें से एक, पृथ्वी से 6500 प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित तारा साइग्नस–1 है। पास के एक विशाल तारे को धीरे-धीरे निगलते हुए साइग्नस–1 का कल्पना चित्र।

एक नवीन संश्लेषण है।

चूंकि समयनुमा कणों के लिए पलायन वेग की लक्ष्मण-रेखा का अस्तित्व है, इसलिए फोटॉन के लिए भी ऐसी कोई दहलीज़ होनी चाहिए। सामान्य कणों की तरह फोटॉन लौट नहीं सकते। उन्हें किसी गुरुत्व पिण्ड से जोड़े रखने का एकमात्र तरीका यह है कि उन्हें एक अत्यन्त सघन सतह से बाहर न फैलने दिया जाए। चूंकि फोटॉन किसी भी भौतिक सूचना के प्रसार की सीमांत अधिकतम गति के द्योतक हैं, इसलिए ऐसी सतह से कुछ भी बाहर नहीं आ सकता। अर्थात् यह एक एकमार्गी सतह बन गई है जो एक श्याम विवर या ब्लैक-होल के क्षितिज को परिभाषित करती है। यानी जैसे ही हमें फोटॉन को रोके रखना होता है, वैसे ही ब्लैक-होल एक प्राकृतिक ज़रूरत बन जाते हैं।

सामान्य सापेक्षता के ये विशिष्ट व गहरे लक्षण का प्रतिपादन तो हम

दिक्काल (स्पेस-टाइम) की ज्यामिति का ही क्वांटमीकरण करना है। दिक्काल (स्पेस-टाइम) की संरचना मूलत: निरंतरता पूर्ण है। उसे खण्डित स्वरूप देने के लिए नवीन गणितीय औज़ार व संरचनाएं विकसित की जा रही हैं। ये लोग वास्तव में क्वांटम ज्यामिति विकसित कर रहे हैं। यह प्रस्ताव चिर-परिचित 4-आयामों की सीमाओं के अंदर ही है।

दोनों ही तरीकों को लगभग बराबर सफलता मिली है। मसलन श्याम विवर यानी ब्लैक-होल की एण्ट्रॉपी को समझने में दोनों ही कुछ हद तक सफल रहे हैं। परन्तु अभी दोनों का काफी विकास होना शेष है। स्ट्रिंग सिद्धांत को कण-भौतिकविदों के एक व्यापक समूह का समर्थन प्राप्त है, जबकि कैनॉनिकल क्वांटमीकरण के सिद्धांत का विकास चंद सापेक्षतावादी कर रहे हैं। दोनों सिद्धांत काफी अलग-अलग हैं।

स्ट्रिंग सिद्धांत में फील्ड सिद्धांत की तकनीकों व अवधारणाओं का उपयोग किया जाता है जबकि कैनॉनिकल क्वांटमीकरण में ज्यामिति संरचनाओं का। दिक्काल (स्पेस-टाइम) के अंतिम सिद्धांत की ओर बढ़ते हुए इन्हें देर सबेर परस्पर मिलना होगा। बहरहाल, इतना तो निश्चित है कि हमें एक नए सिद्धांत की ज़रूरत तो है। वह स्ट्रिंग सिद्धांत हो, या कैनॉनिकल क्वांटमीकरण का सिद्धांत, या कुछ और।

आइए अपने अतीत के अनुभव की नज़र से भविष्य के अज्ञात को देखें। न्यूटन से आइंस्टाइन तक मार्गदर्शक शक्ति प्रकाश, उसका स्थिर वेग तथा गुरुत्वाकर्षण के साथ उसकी अंतर्क्रिया थी। गुरुत्वाकर्षण के साथ अंतर्क्रिया के लिए ज़रूरी था कि दिक्काल (स्पेस-टाइम) में वक्रता हो। इन सरल तथ्यों के आधार पर हमने तर्क किया कि गुरुत्वाकर्षण से सामान्य कणों को त्वरण मिलने के अलावा, आकाश में वक्रता उत्पन्न होनी चाहिए ताकि फोटॉन गुरुत्वाकर्षण को महसूस कर सकें।

चूंकि त्वरण एक क्रमिक रूप (Gradient) से उत्पन्न होता है, इसलिए स्थिर विभव का कोई गतिज प्रभाव नहीं होता। आकाश की वक्रता के ज़रिए फोटॉन प्रत्यक्ष रूप से इस विभव को महसूस करते हैं और इसलिए वे इसके मान के प्रति संवेदी होते हैं। इसलिए स्थिर विभव को अनदेखा नहीं किया जा सकता, क्योंकि यह गैर-शून्य वक्रता उत्पन्न करता है। अर्थात् जिस विभव को न्यूटन के सिद्धांत में निरपेक्ष (परम) रूप में निकाला गया था, उसे आइंस्टाइन का सिद्धांत सापेक्ष रूप में देखता है। पुराने से नए सिद्धांत की यात्रा सदैव एक संश्लेषण होती है। यह दरअसल वही पुराना न्यूटनीय विभव है जिसका शून्य अनंत में निर्धारित कर दिया गया है। यह

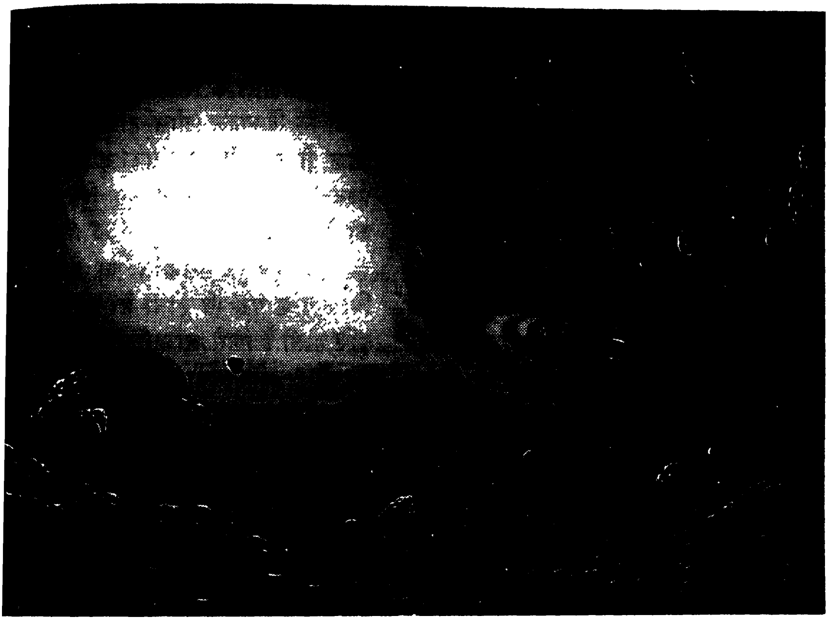

कल्पना की उड़ान: ब्लैक होल की तलाश के लिए जिन विभिन्न आकाशीय पिंडों का अध्ययन किया जा रहा है उनमें से एक, पृथ्वी से 6500 प्रकाश वर्ष की दूरी पर स्थित तारा साइग्नस–1 है। पास के एक विशाल तारे को धीरे-धीरे निगलते हुए साइग्नस–1 का कल्पना चित्र।

एक नवीन संश्लेषण है।

चूंकि समयनुमा कणों के लिए पलायन वेग की लक्ष्मण-रेखा का अस्तित्व है, इसलिए फोटॉन के लिए भी ऐसी कोई दहलीज़ होनी चाहिए। सामान्य कणों की तरह फोटॉन लौट नहीं सकते। उन्हें किसी गुरुत्व पिण्ड से जोड़े रखने का एकमात्र तरीका यह है कि उन्हें एक अत्यन्त सघन सतह से बाहर न फैलने दिया जाए। चूंकि फोटॉन किसी भी भौतिक सूचना के प्रसार की सीमांत अधिकतम गति के द्योतक हैं, इसलिए ऐसी सतह से कुछ भी बाहर नहीं आ सकता। अर्थात् यह एक एकमार्गी सतह बन गई है जो एक श्याम विवर या ब्लैक-होल के क्षितिज को परिभाषित करती है। यानी जैसे ही हमें फोटॉन को रोके रखना होता है, वैसे ही ब्लैक-होल एक प्राकृतिक ज़रूरत बन जाते हैं।

सामान्य सापेक्षता के ये विशिष्ट व गहरे लक्षण का प्रतिपादन तो हम

पूरे सिद्धांत का ज़िक्र किए बगैर ही कर गए।

मैं कहना यह चाहता हूं कि नए सिद्धांत के कुछ गुणधर्मों का पूर्वानुमान कर पाना तथा उनको प्रतिपादित कर पाना संभव होना चाहिए। तो अब जब हम उच्च ऊर्जा के संदर्भ में आइंस्टाइन से आगे जाना चाहते हैं तो हमें किस तरह की बातों की उम्मीद करनी चाहिए। बदकिस्मती से, प्रकाश जैसी कोई चीज़ हमारा मार्ग प्रशस्त करने के लिए मौजूद नहीं है। एक संभव चीज़ है गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र ऊर्जा – जैसे न्यूटन-आइंस्टाइन संश्लेषण में गुरुत्वीय विभव था। सामान्य सापेक्षता में यह विभव सिर्फ दिक्काल (स्पेस-टाइम) की वक्रता के रूप में नज़र आता है। क्या ऐसा हो सकता है कि उच्च ऊर्जा की सीमा पर यह अन्य 'पदार्थ क्षेत्रों' की तरह ठोस रूप ले ले? शायद यह आगे बढ़ने की सही दिशा हो।

किसी सिद्धांत की कसौटी यह है कि वह किस तरह के सवालों को स्वीकार करता है। नया सिद्धांत ऐसे सवालों को शामिल करता है जिन्हें पुराने सिद्धांत में स्थान नहीं दिया जा सकता था। मसलन, सामान्य सापेक्षता सिद्धांत के अंतर्गत यह एक वैध सवाल है कि दिक्काल (यानी ब्रह्मांड) की शुरुआत कब हुई। और इसका जवाब यह है कि इसका विस्फोटक जन्म करीब 15-20 अरब वर्ष पूर्व एक गर्म बिग-बैंग के ज़रिए हुआ था। इसी शृंखला में नए सिद्धांत के लिए एक प्रश्न यह होगा कि दिक्काल (स्पेस-टाइम) किस चीज़ से बना है। यह एक बुनियादी प्रश्न है जिसका जवाब नए सिद्धांत को देना होगा।

एक मूलभूत सिद्धांत का असर विश्व दृष्टि पर भी होता है। यह वह दृष्टि होती है जिसे आमतौर पर लोगों के बीच स्वीकार्यता मिल चुकी है। मसलन आज के समाज ने इस तथ्य को अंगीकार कर लिया है कि पृथ्वी सपाट न होकर गेंद के समान गोल है। थोड़े ज़्यादा अमूर्त स्तर पर यह बात भी हमारे सामान्य ज्ञान व संस्कृति का अंग बन चुकी है कि सारे भौतिक पिण्ड एक-दूसरे को आकर्षित करते हैं।

इसी सिलसिले में अगला कदम इस तथ्य को अंगीकार करने का होगा कि विशाल पिण्ड अपने आसपास के आकाश में वक्रता उत्पन्न करते हैं। यह एक अमूर्त दिक्काल (स्पेस-टाइम) ब्रह्मांड है जो सपाट न होकर गोलाई लिए हुए है। इस वक्रता को नापने का एक तरीका यह है कि यह देखा जाए कि विशाल पिण्ड के समीप गुज़रने पर प्रकाश कितना मुड़ता है। अर्थात् दिक्काल (स्पेस-टाइम) की ज्यामिति का महत्व उतना ही है जितनी हमारे ग्रह पृथ्वी की ज्यामिति का। अंतर इतना ही है कि दिक्काल (स्पेस-टाइम) की ज्यामिति एक अमूर्त विचार है जबकि

पृथ्वी की ज्यामिति ठोस चट्टानों से बनी है।

गुरुत्वाकर्षण के समान सामाजिक अंतर्क्रियाएं भी सार्वभौमिक हैं और हमारे अस्तित्व व खुशहाली के लिहाज़ से महत्व रखती हैं। इसलिए इन पर हम सबको सामूहिक रूप से पूरी संजीदगी व निष्ठा के साथ ध्यान देना चाहिए। हमें अपने साथी नागरिकों को कदापि नहीं भूलना चाहिए जो अपनी खरी कमाई में से हमारे लिए और हमारे काम की सुविधाओं के लिए योगदान देते हैं। अपने काम के ज़रिए ज्ञान के भण्डार में योगदान देने के अलावा, विज्ञान की विधि के अनुशीलनकर्त्ता होने के नाते हमें व्यापक सामाजिक मुद्दों संबंधी विचार-विमर्श में ज़िम्मेदारी से भाग लेना चाहिए।

आइए सबसे अंतर्क्रिया के इस बुनियादी गुरुत्वीय गुण का अनुसरण करें और परस्पर करीब आएं। यदि विज्ञान व समाज दोनों में इस बात को सही अर्थों में स्वीकार कर लिया जाए तो उम्मीद है कि सामंजस्य, शांति व एक रोशनख्याल विश्व समुदाय की स्थापना हो पाएगी। यह सभी के लिए एक गुरुतर महत्व का सवाल है।

और अंत में गालिब का एक शेर:

कहने को तो दुनिया में हैं और
सुखनवर बहुत अच्छे,
कहते हैं कि गालिब का है
अंदाज़े बयां और।

नरेश दधीच: पुणे के इंटर यूनिवर्सिटी सेंटर फॉर एस्ट्रोनॉमी एंड एस्ट्रोफिज़िक्स (IUCAA) में खगोल विज्ञान में शोधकार्य कर रहे हैं। इस संस्थान को बनाने में उनकी विशेष भूमिका रही है।

अनुवाद – सुशील जोशी: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े हैं। स्वतंत्र रूप से विज्ञान लेखन एवं अनुवाद करते हैं।

यह लेख 'इंडियन एसोसिएशन फॉर जनरल रिलेटिविटी एंड ग्रेविटेशन' (IAGRG) द्वारा आयोजित एक व्याख्यान माला में, नरेश दधीच द्वारा दिए गए व्याख्यान पर आधारित है। यह आयोजन 30 जनवरी, 2001 को नागपुर में किया गया था। यह व्याख्यान माला एसोसिएशन के दो वरिष्ठतम सदस्यों प्रोफेसर पी. सी. वैद्य एवं ए. के. रायचौधरी के सम्मान में आयोजित की जाती है।

संदर्भ के अंक-37 में प्रकाशित, इस लेख के पहले भाग में पृष्ठ 32 पर, चित्र के नीचे दिए गए विवरण के आखिरी वाक्य से ऐसा आभास मिलता है कि प्रकाश की गति में 'नगण्य परिवर्तन' संभव है, जो सही नहीं है। इस चूक के लिए हमें खेद है। – संपादक मंडल।

रेबीज़ की रोकथाम

लुई पास्चर

6 जुलाई, 1885 – पागल कुत्ते द्वारा बुरी तरह काटे गए नौ वर्षीय जोसेफ मीस्टर को लुई पास्चर की प्रयोगशाला में लाया जाता है; लुई पास्चर यानी अपने समय के प्रसिद्ध माइक्रोबायोलॉजिस्ट/जीवाणुशास्त्री व कई बीमारियों की वेक्सीन विकसित करने वाले वैज्ञानिक। उस रात आठ बजे जोसेफ चिकित्सा जगत के इतिहास में दर्ज़ हो गया – रेबीज़ के खिलाफ टीका लगाने वाला वह पहला इंसान था। पास्चर का खुद का कथन कि 'संयोग भी उसी की मदद करता है जिसकी दिमागी तैयारी हो' जोसफ मीस्टर के इलाज के इस किस्से पर बहुत ही नाटकीय ढंग से लागू होता है। इसी घटना का विस्तृत विवरण पास्चर ने अपने इस लेख में दिया है।

रेबीज़ की वेक्सीन विकसित करने से पहले पास्चर ने चिकन कोलरा के जीवाणु की खोज कर उन्हें अलग किया था। पास्चर ने कमज़ोर जीवाणु की फसल तैयार की और चूज़ों को

उसके टीके लगाए। ऐसा करने से उनमें, यानी चूज़ों में कोलरा के जीवाणु के विरुद्ध प्रतिरोधी शक्ति विकसित हो गई।

इसके बाद पास्चर ने अपना ध्यान एन्थ्रेक्स बीमारी पर केन्द्रित किया जो चौपायों और पालतू जानवरों में होती है। इसके लिए भी उसने वही विधि अपनाई जो उसने कोलरा का प्रतिरोधी खोजने के लिए विकसित की थी। उसने बेक्टीरिया को 42 डिग्री सेल्सियस तापमान पर ऑक्सीजन की उपस्थिति में विकसित करके कमज़ोर जीवाणु बनाए और उनके टीके लगाकर चौपायों में इस बीमारी के प्रति प्रतिरोधी शक्ति विकसित की ताकि वे बीमारी के समय उसी तरह के सशक्त जीवाणुओं का प्रतिरोध कर पाएं। पास्चर ने इस विधि का नाम वेक्सीनेशन रखा।

जिस वेक्सीन ने जोसफ का जीवन बचाया था उसे पास्चर ने बहुत मेहनत और कठिनाई से तैयार किया था और जीवाणुओं को कमज़ोर बनाने के लिए उन्हें कई तरह के जानवरों पर प्रयोग करने के बाद प्राप्त किया था। पास्चर वास्तव में रेबीज़ के विषाणुओं को कभी भी देख नहीं पाया था। उसका सोचना था कि वे इतने सूक्ष्म होते हैं कि उन्हें माइक्रोस्कोप से भी नहीं देखा जा सकता। तब तक वायरस द्वारा रोग का सिद्धांत ईजाद नहीं हुआ था।

जोसेफ मीस्टर की ज़िंदगी लुईस पास्चर के हाथ बचने जितना ही नाटकीय किस्सा इस घटना के पचपन साल बाद उसकी मौत के बारे में है। कुछ साल बाद जोसफ पास्चर संस्थान का चौकीदार नियुक्त हो गया जिसकी स्थापना 1888 में रेबीज़ के उपचार के लिए की गई थी। अब यह संस्थान जीव विज्ञान की शोध का एक प्रमुख केन्द्र है। 1940 में नाज़ियों ने जोसफ मीस्टर को संस्थान में पास्चर का गोपनीय कक्ष खोलने का आदेश दिया। नाज़ियों का हुकम मानने के बजाय मीस्टर ने अपने आपको शहीद कर देना बेहतर समझा।

आगे पास्चर द्वारा लिखा गया अपना शोध पत्र प्रस्तुत है:

एक तरीका जिससे कुत्ते के काटने के बाद रेबीज़ के विकास को रोका जा सके

रेबीज़ के अध्ययन की प्रगति में रोग निरोधक तरीके का विकास एक महत्वपूर्ण कदम था। इसका ज़िक्र मैंने अपने और अपने साथियों के साथ प्रकाशित लेखों में किया था। मगर यह प्रगति ज़्यादा वैज्ञानिक थी, व्यावहारिक नहीं, और इसके इस्तेमाल में दुर्घटनाएं भी हो सकती थीं। जिन 20 कुत्तों का मैंने इलाज किया था उनमें से केवल 15-16 को ही मैं रेबीज़ के प्रति निरोधक कर पाया था।

इसके बाद, इलाज के अंत में यह ज़रूरी था कि रोग निरोधकता की स्थिति को प्रबल और पुष्ट करने के लिए एक बहुत ही घातक वायरस, एक नियंत्रक वायरस, का टीका लगाया जाए। इससे भी ज़्यादा ज़रूरत इस बात की थी कि इन कुत्तों को अंतिम वायरस के टीके से रेबीज़ होने पर जितने दिन बाद रोग के लक्षण दिखने चाहिए, उसके भी काफी दिन बाद तक निगरानी में रखा जाए। अतः इस बात की निश्चिंतता के लिए कि रोग निरोधकता की स्थिति आ चुकी है, तीन-चार महीनों तक रुकना पड़ता था। इस मुश्किल प्रक्रिया के कारण इस तरीके का इस्तेमाल बहुत ही सीमित रहा होता।

अंत में यह तरीका किसी रेबीज़ जानवर (जिसके काटने से रेबीज़ रोग उत्पन्न हो जाए) के काटने का तुरंत इलाज करने में समर्थ नहीं था, जो कि ज़रूरी होता है क्योंकि रेबीज़ से पगलाया कुत्ता कभी भी किसी को काट सकता है।

इसलिए यह आवश्यक था कि एक ऐसे तरीके की खोज की जाए जो इस बीमारी का तुरंत इलाज करे और जो कुत्तों को पूरी तरह से सुरक्षित कर दे। ऐसे तरीके की खोज किए बगैर इनका प्रयोग मनुष्यों पर करने की धृष्टता भी नहीं की जा सकती थी।

अनगिनत प्रयोगों के बाद मैंने एक ऐसे रोगनिरोधक तरीके की खोज की है जो कि न केवल व्यावहारिक है बल्कि त्वरित भी है, और जिसने कुत्तों पर बहुत ही अच्छे और सफल परिणाम दिए हैं। यह तरीका इतना सफल रहा है कि मुझे विश्वास है कि इसका प्रयोग सभी जानवरों, यहां तक कि मनुष्य पर भी किया जा सकता है।

यह तरीका प्रमुखतः निम्नलिखित तथ्यों पर आधारित है:

सामान्य रेबीज़ ग्रसित कुत्ते की रीढ़ की संक्रामक तंत्रिका का टीका अगर ऑपरेशन करके खरगोश की रीढ अथवा मस्तिष्क की बाहरी झिल्ली के नीचे लगाया जाए तो खरगोश को औसतन 15 दिन के बाद रेबीज़ हो जाता है।

अगर टीका लगाने के ऊपर वर्णित तरीके से पहले खरगोश के वायरस को दूसरे खरगोश में, दूसरे से तीसरे तथा तीसरे से चौथे खरगोश में डाला जाए . . . तो एक अजीब-सा रुझान समझ में आता है। वो यह कि बाद के खरगोशों में यानी उस सीरीज़ के अंत के खरगोशों में रेबीज़ का संचयन काल, यानी टीका लगाने और रेबीज़ के लक्षण दिखने के बीच का समय, लगातार कम होता जाता है।

इसी तरह बीस से पच्चीस बार एक खरगोश से दूसरे खरगोश, और फिर तीसरे. . . आदि से गुज़रने पर आठ दिन के समय अंतराल तक पहुंचे। तत्पश्चात फिर से अन्य खरगोशों से जब वायरस को गुज़ारा गया तो समय अंतराल सात दिन हो गया – जो कि नए प्रयोगों में 90 खरगोशों में से गुज़रने के बाद भी अत्यंत नियमितता से सात दिन का बना रहा। अभी तक के प्रयोगों से मैं इस संख्या तक पहुंचा हूं, और अधिकाधिक इतना ही कहा जा सकता है कि इस अंतराल के सात दिन से थोड़ा-सा घटने की हल्की-सी प्रवृत्ति दिखाई देती है।

ये प्रयोग जो नवंबर 1882 में शुरू हुए थे, बिना टूटे तीन साल तक लगातार चले हैं, और हमें इस बीच रेबीज़ से क्रमानुसार ग्रसित और खत्म हुए खरगोशों के अलावा कहीं और से वायरस नहीं लेना पड़ा है। इस वजह से, हमारे पास किसी भी वक्त रेबीज़ का शुद्ध वायरस, और वो भी लगभग या बिल्कुल एक दूसरे जैसा मिल पाना काफी आसान था। इस तरीके के व्यावहारिक उपयोग में यह एक प्रमुख तथ्य है।

इस प्रयोग के प्रत्येक चरण में समस्त खरगोशों की रीढ़ की तंत्रिका में एक बराबर घातकता का रेबीज़ वायरस पाया जाता है। अगर इन मेरू तंत्रिकाओं से कुछ से.मी. लंबा टुकड़ा निकाल लिया जाता है, यह ध्यान में रखते हुए कि उनमें कोई भी और मिलावट न हो पाए, और फिर उन्हें सूखी हवा में लटकाकर रखा जाता है; तो उनकी घातकता धीरे–धीरे कम होने लगती है, और अंततः खत्म हो जाती है। कितने दिन में यह घातकता समाप्त हो जाएगी यह कुछ हद तक मेरूरज्जु की मोटाई पर निर्भर करता है, परन्तु प्रमुखतः यह बाहरी तापमान से तय होता है। तापमान जितना कम होगा उतने ही ज़्यादा समय तक घातकता बनी रहेगी। ये परिणाम इस तरीके का प्रमुख वैज्ञानिक आधार बिंदु हैं।

ये सब तथ्य सुनिश्चित करने के बाद कुत्ते को तुलनात्मक रूप से काफी कम समय में रेबीज़ के प्रति, इस तरीके से, निरोधक किया जा सकता है:

सात दिन वाले अंतराल का रेबीज़

का टीका लगाकर रेबीज़ से ग्रस्त होकर खत्म हुए खरगोशों की संक्रामित मेरूरज्जु के टुकड़े रोज़ क्रमशः अलग-अलग फ्लास्क में लटकाकर रखे जाते हैं और फ्लास्क की तली में पोटाश के टुकड़े रखकर फ्लास्क के अंदर की हवा को सूखा रखा जाता है। प्रत्येक दिन जीवाणुरहित/निर्जीवीकृत द्रव से भरी सीरींज जिसमें मेरूरज्जु के छोटे-छोटे टुकड़े मिला दिए गए हैं, का टीका एक कुत्ते की चमड़ी के नीचे लगाया जाता है। शुरुआत मेरूरज्जु के ऐसे टुकड़े से की जाती है जो ऑपरेशन के बाद इतने दिन तक सूखी हवा में लटकाकर रखा गया हो कि यह एकदम सुनिश्चित हो कि मेरूरज्जु बिल्कुल भी घातक नहीं है। (इसके लिए कितने दिन लगेंगे यह पिछले प्रयोग में सुनिश्चित किया गया था)। अगले दिन वही ऑपरेशन उससे कम पुरानी मेरूरज्जु से किया जाता है, जो पिछली वाली से दो दिन के अंतर वाली हो। इस तरह से आगे बढ़ते हुए अंत में, यह प्रयोग अत्यन्त घातक मेरूरज्जु के साथ किया जाता है जो फ्लास्क में केवल दो दिन तक रखी गई थी।

अब (इस प्रकार) कुत्ते को रेबीज़ के प्रति निरोधक बना दिया गया था। इसे चमड़ी के नीचे वायरस का टीका लगाया जा सकता है, या ऑपरेशन करके मस्तिष्क की सतह पर, परन्तु इसमें बाद में भी रेबीज़ का विकास नहीं होता।

इस प्रयोग में एक बार भी असफल हुए बिना मेरे पास विभिन्न उम्र और जाति/प्रजाति के ऐसे पचास कुत्ते थे जो रेबीज़ के प्रति निरोधक हो चुके थे और तब सोमवार, 6 जुलाई (1885) को अलसासे से तीन लोग अचानक ही मेरी प्रयोगशाला में आए।

शलेस्टोट्ट के पास स्थित मेसेनगॉट का किराने वाला, थियोडोर वॉन जिसे उसके खुद के पगलाए हुए कुत्ते ने 4 जुलाई को बांह पर काट लिया था।

नौ वर्ष का जोसेफ मीस्टर जिसे भी 4 जुलाई को सुबह आठ बजे उसी कुत्ते ने काटा था। इस बच्चे को कुत्ते ने गिरा दिया था और उसके हाथ, पैर और जांघ पर जगह-जगह काट लिया था। कुछ ज़ख्म तो इतने गहरे थे कि उसका चलना-फिरना मुश्किल हो गया था।

ज़्यादातर ज़ख्मों को 4 जुलाई की शाम आठ बजे, दुर्घटना के बारह घंटे बाद विले के डॉक्टर वेबर ने पेनिक एसिड से दाग दिया था।

तीसरा व्यक्ति, छुटके जोसेफ मीस्टर की मां थी जिसे कुत्ते ने नहीं काटा था।

कुत्ते के मालिक ने जब कुत्ते को खत्म करके उसकी जांच की तो उसका पेट घास-फूस-भूसा और लकड़ी की छीलन से भरा हुआ था। यकीनन कुत्ता पगला गया था। जब जोसेफ मीस्टर

को उसके नीचे से खींचकर निकाला गया तो वह झाग व खून से सना हुआ था।

एम. वॉन की बांह पर भीतरी चोट की वजह से बहुत सारे निशान थे परन्तु उसने मुझे आश्वस्त किया कि कुत्ते के दांत उसकी शर्ट को भेद नहीं पाए थे। चूंकि उसके लिए डर की कोई बात नहीं थी इसलिए मैंने उसे कहा कि वो उसी दिन अलसासे वापस लौट सकता है। उसने ऐसा ही किया। पर मीस्टर और उसकी मां को मैंने अपने पास रखा।

'सायंस अकादमी' की साप्ताहिक बैठक 6 जुलाई को हुई। वहां पर मेरी मुलाकात डॉक्टर वुल्पियन से हुई जिन्हें मैंने इस घटना के बारे में बताया। एम. वुल्पियन और मेडिसिन के प्रोफेसर डॉक्टर ग्रांशर तुरन्त आकर जोसेफ मीस्टर को देखने को तैयार हो गए – घावों की संख्या और उनकी स्थिति का जायज़ा लेने के लिए। चौदह घाव थे, उसके शरीर पर।

हमारे प्रबुद्ध साथी और डॉक्टर ग्रांशर का मत था कि ज़ख्मों की संख्या और उनकी घातकता को देखते हुए यह लगभग पक्का था कि जोसेफ मीस्टर को रेबीज़ हो जाएगा। तत्पश्चात मैंने एम. वुल्पियन और एम. ग्रांशर को अपने नए परिणामों के बारे में बताया, जो मैंने एक साल पहले कॉपेनहेगन में अपने व्याख्यान के बाद, रेबीज़ पर की गई शोध के दौरान प्राप्त किए थे।

यह सुनिश्चित था कि यह बालक जीवित नहीं रहेगा, इसलिए मैंने दुविधा और चिंता के बावजूद जोसेफ मीस्टर पर यह तरीका, जो कुत्तों के साथ सफल रहा था, अपनाने का तय किया।

यह सच है कि मेरे पचास कुत्तों को जब मैंने रेबीज़ से निरोधक बनाया तो उन्हें उससे पहले किसी ने काटा नहीं था; परन्तु मुझे मालूम था कि उन परिस्थितियों को अपनी गणनाओं में से छोड़ा जा सकता है क्योंकि मैंने पहले ही ऐसे कुत्तों को रेबीज़ से निरोधक बनाया था जिन्हें काटा गया हो (कुत्ते ने काटा हो)। मैंने इसी वर्ष कमीशन के सामने इस नए और महत्वपूर्ण काम के साक्ष्य प्रस्तुत किए थे।

तत्पश्चात, 6 जुलाई की शाम 8 बजे, 4 जुलाई को कुत्ते के काटने के 60 घंटे बाद, डॉक्टर वुल्पियन व ग्रांशर की उपस्थिति में बालक मीस्टर को उसके दाहिने अधोपास्थिक (Hypochondrium) क्षेत्र में चमड़ी के नीचे टीका लगाया गया। उस आधी भरी हुए 'पारवाज़' सीरिंज में एक ऐसे खरगोश की मेरूरज्जु के टुकड़े थे जो 21 जून को रेबीज़ से मर गया था। तब से उस मेरूरज्जु को सूखी हवा की फ्लास्क में सुरक्षित रखा गया

था, यानी कि पंद्रह दिन तक।

अगले दिन फिर से ताज़ा टीका तैयार किया गया। इस तरह मैंने तेरह टीके बनाए और उपचार दस दिन तक चला। इसके बारे में मैं बाद में बताऊंगा कि अगर कम टीके लगाते तो भी पर्याप्त होता। परन्तु सबको समझ में आएगा कि पहले प्रयास में मैं विशेषतौर पर संभल कर चल रहा था।

अगले दिनों में, नए टीके बनाए गए और उन्हें सदैव अधोपास्थिक हिस्से में साथ दी तालिका के अनुसार लगाया गया। मेरूरज्जु की घातकता की स्थिति जानने के लिए, दो नए खरगोशों का ऑपरेशन करके उन्हें उन सब मेरूरज्जुओं का टीका लगाया गया जिनका इस्तेमाल उपचार में किया गया था।

इन खरगोशों के अवलोकन से हमें पता चला कि जुलाई 6, 7, 8, 9, 10 की मेरू तंत्रिकाएं घातक नहीं थीं क्योंकि उनसे खरगोशों को रेबीज़ नहीं हुआ (खरगोश पागल नहीं हुए)। 11, 12, 15 और 16 जुलाई को इस्तेमाल की गई सब मेरूरज्जुएं घातक थीं – और उनमें घातक पदार्थ लगातार अधिक मात्रा में मौजूद था। जुलाई 15 व 16 वाले खरगोशों को सात दिन में रेबीज़ हो गया, 12 व 14 जुलाई वालों को आठ दिन में, और जुलाई 11 वालों को पंद्रह दिन पश्चात।

यानी कि आखिरी दिनों में, मैंने जोसेफ मीस्टर को सबसे घातक रेबीज़ के वायरस का टीका लगाया था – कुत्ते से लिया हुआ वायरस जिसे कइयों बार खरगोशों में से गुज़ारा गया था – ऐसा वायरस जिससे खरगोशों को सात दिन में रेबीज़ हो जाता था और कुत्तों को 7 से 10 दिन में।

जोसेफ को दिए गए टीकों का विवरण

जुलाई	समय	मेरूरज्जु लिया	सुखाया
06	08 p.m.	01 जून	15 दिन
07	09 a.m.	03 जून	14 दिन
07	06p.m.	25 जून	12 दिन
08	09a.m.	27 जून	11 दिन
08	06p.m.	29 जून	09 दिन
09	11a.m.	01 जुलाई	08 दिन
10	11a.m.	03 जुलाई	07 दिन
11	11a.m.	05 जुलाई	06 दिन
12	11a.m.	07 जुलाई	05 दिन
13	11a.m.	09 जुलाई	04 दिन
14	11a.m.	11 जुलाई	03 दिन
15	11a.m.	13 जुलाई	02 दिन
16	11a.m.	15 जुलाई	01 दिन

जब निरोधकता की स्थिति आ जाती है तो सबसे घातक वायरस का काफी मात्रा में टीका लगाने पर भी कोई बुरा असर नहीं होता। मुझे सदैव लगा है कि इसका संभावित असर केवल यही हो सकता है कि प्रतिरोधकता और बढ़ जाती होगी।

इसलिए जोसेफ मीस्टर न सिर्फ उस रेबीज़ से बच गया जो उसे कुत्ते के काटने की वजह से हो जाता; परन्तु उस रेबीज़ से भी जो मैंने उसकी प्रतिरोधक शक्ति के परीक्षण के लिए टीके के रूप में दिया और जो कुत्तों में पाए जाने वाले सामान्य रेबीज़ से ज़्यादा घातक है।

अत्यंत घातक वायरस के आखिरी टीके का एक और फायदा है कि काटने की वजह से जो आशंका बनी रहती है, उन पर फुलस्टॉप (रोक) लग जाती है। अगर रेबीज़ होना ही है तो घातक वायरस के टीके बाद, उसे और जल्दी हो जाना चाहिए – बनिस्बत कुत्ते के काटने से संक्रमित वायरस से। मध्य अगस्त से मैं जोसेफ मीस्टर के स्वस्थ भविष्य के बारे में आत्मविश्वास के साथ विचार कर पा रहा हूं। आज की स्थिति में जबकि तीन महीने और उसके ऊपर तीन हफ्ते गुज़र चुके हैं, वह एकदम स्वस्थ है।

कुत्ते के काटने के बाद रेबीज़ के उपचार/रोकथाम का जो नया तरीका मैंने अभी बताया है उसका क्या अर्थ निकलता है इस सवाल की संपूर्ण व्याख्या करने का अभी मेरा कोई इरादा नहीं है। अभी तो इस प्रयोग का, जिसे मैं जारी रख रहा हूं, महत्व समझने के लिए जितन शुरुआती विश्लेषण की ज़रूरत हैं, मैं अपने आपको उसी तक सीमित रखूंगा, ताकि आखिरकार सबसे बेहतर विश्लेषण/व्याख्या को अपनाया जा सके।

विभिन्न तरह के घातक वायरसों को कमज़ोर करने के जो तरीके अपनाए जाते हैं, और उनसे जो रोग-निरोधक हासिल किया जाता है; और यह मानते हुए कि हवा इस वायरस को कमज़ोर बना देती होगी, सबसे पहले इस तरीके का जो कारण समझ में आता है कि सूखी हवा के संपर्क में रहने से मेरूरज्जु के टुकड़ों में उपस्थित (वायरस) की घातकता लगातार कम होती जाती होगी, और अंत में एकदम खत्म हो जाती होगी।

इस विचार से हम यह मानने लगेंगे कि यह जो तरीका है वो इस बात पर निर्भर करता है कि सबसे पहले मरणासन्न वायरस इस्तेमाल किए जाएं, फिर कमज़ोर और उसके बाद ज़्यादा और ज़्यादा घातक।

मैं दिखाऊंगा कि तथ्य इस विचार की तरफ इंगित नहीं करते। मैं साबित करूंगा कि हवा में सुखाई गई मेरूरज्जु की

घातकता का परीक्षण करने के लिए अपनाई गई विधि में खरगोश में रेबीज़ होने (के लक्षण दिखने) में समय की बढ़ोत्तरी दरअसल मेरूरज्जु में रेबीज़ वायरस की मात्रा की कमी की वजह से है, न कि उनकी घातकता में कमी आने की वजह से।

अंत में मैं कहना चाहूंगा कि आज की तारीख में शायद सबसे महत्वपूर्ण समस्या, जिसे हल करना ज़रूरी है, यह है कि कुत्ते के काटने और उपचार शुरू करने के बीच कितना समय अंतराल हो सकता है। जोसेफ मीस्टर के केस में यह अंतराल ढाई दिन का था – परन्तु कई बार यह इससे भी कहीं ज़्यादा हो सकता है।

पिछले मंगलवार, 20 अक्टूबर को डॉक्टर वुल्पियन और ग्रांशर की मदद से मैंने 15 साल के एक युवक का उपचार शुरू किया जिसे 6 दिन पहले एक कुत्ते ने दोनों हाथों पर काट लिया था और जिसकी स्थिति गंभीर थी। मैं उसके उपचार के नतीज़ों के बारे में अकादमी को जल्द ही सूचित करूंगा।

लुई पास्चर (1822-1895): उन्नीसवीं सदी में माइक्रोबायोलॉजी को विकसित करने वाले जीवाणुशास्त्री थे। रेबीज़ के खिलाफ वेक्सीन तैयार करने के अलावा उन्होंने पस्च्यूरीकरण पर भी शोधकार्य किया।

मूल शोध-पत्र लुई पास्चर द्वारा लिखित एवं 'रिसेंट एसेज़ ऑन बेक्टिरिया इन रिलेशन टू डिसीज़' शीर्षक से 1886 में प्रकाशित किया गया था। संदर्भ पत्रिका में प्रकाशित यह लेख रियल्म ऑफ साइंस में प्रकाशित लेख का अनुवाद है।

रियल्म ऑफ साइंस में कुल 20 खंड हैं। इन खंड़ों में प्रकाशित सामग्री को पांच प्रमुख समूहों में बांटा गया है : द नेचर ऑफ साइंस, द नेचर ऑफ मैटर एंड एनर्जी, द नेचर ऑफ स्पेस, द नेचर ऑफ अर्थ एन्वायरनमेंट और द नेचर ऑफ लाइफ।

यानुस कोर-चौक

आज के समय के लिए एक कथा

ब्रूनो बेटलहाइम

पोलैंड में बच्चों के एक अनाथालय में काम करते हुए यानुस कोर-चौक बच्चों की दुनिया को काफी करीब से समझ रहे थे, वे बच्चों की स्वतंत्रता के हिमायती थे। उन्हें अनाथालय के बच्चों से बेहद प्यार था। उन्होंने इन यहूदी बच्चों का साथ तब भी नहीं छोड़ा जब नाज़ी फौज इन बच्चों को गैस चेंबर में मौत के हवाले कर रही थी।

यहूदी धर्मग्रंथ कहता है: ''ईश्वर सदाचारी लोगों की मृत्यु पर खुश होता है।'' अगर हम यह पूछें कि आखिर ईश्वर को सदाचारी लोगों की ज़िन्दगी की बजाए मौत क्यों अच्छी लगती है तो यह जवाब दिया जाता है। 'जब तक अच्छे लोग सदाचार का जीवन बिताते हैं, ईश्वर खुश होता है; लेकिन उनके मरने पर ही यह निश्चित हो पाता है कि वे लोग अच्छाई के रास्ते से कभी नहीं हटे।'

हमारे जीवन में जो सदाचारी व्यक्ति हुए उनमें से एक के बारे में तो हम निश्चित ही कह सकते हैं कि उसकी शहादत के बाद ही दुनिया को उसका पता चला, मानो कि वह धर्मग्रंथों की बात प्रमाणित कर रहा हो। खुद ही मृत्यु का वरण करना ही उसके निः स्वार्थ जीवन का आइना बन गया।

यह सदाचारी व्यक्ति था डॉक्टर यानुस कोर-चौक जिसने जर्मन कॉनसेंट्रेशन कैंप में निश्चित मृत्यु से बचाए जाने के तमाम प्रयासों को ठुकरा दिया। उन्होंने उस बदहाली में अनाथ बच्चों का साथ छोड़ने से इंकार कर दिया जिनकी भलाई के लिए उन्होंने

अपना सारा जीवन लगा दिया था – सिर्फ इसलिए कि जब वे मरें तो इंसान की अच्छाई में उनका विश्वास बना रहे। वह इंसान जिसने उनके शरीर का संरक्षण किया था और उनके दिमागों को स्वतंत्र किया था; जिसने गरीबी और दुर्दशा से उन्हें बचाया था और दुनिया में और खुद में आस्था पैदा की थी; जो कि आध्यात्मिक और भौतिक जीवन में उनका पथप्रदर्शक था।

कोर-चौक ने बच्चों का विश्वास बनाए रखने के लिए अपना जीवन न्यौछावर कर दिया जबकि वे आसानी से खुद को बचा सकते थे। उनके कई पोलिश (पोलैंड के रहने वाले) मित्रों ने उन्हें बचाने का प्रस्ताव रखा क्योंकि वे पोलैंड के सांस्कृतिक जीवन में एक प्रतिष्ठित व्यक्ति माने जाते थे। शुभचिंतक उनके लिए एक नकली पहचान पत्र बनाने के लिए तैयार थे। उन्होंने यह भी कोशिश की कि वे वारसा घेट्टो से भाग निकलें। वे बच्चे जिन्हें कोर-चौक ने पाल-पोस कर बड़ा किया था और जो अब स्वतंत्र रूप से बाहर रह रहे थे, वे भी यह कहते हुए उनके पास पहुंचे कि छुटपन में कोर-चौक उनके उद्धारक थे इसलिए अब उन्हें कोर-चौक को बचाने का मौका मिलना चाहिए।

लेकिन कोर-चौक जिन्होंने वारसा में तीस वर्षों से यहूदी यतीमखाने की देखभाल की थी, वे उन बच्चों को छोड़कर जाने को किसी भी शर्त पर तैयार नहीं थे जिन्होंने अपना विश्वास उनमें रखा था। कोर-चौक ने उन शुभचिंतकों को कहा, "एक बीमार बच्चे को रात में अकेला नहीं छोड़ा जाता। इसी तरह ऐसे समय में बच्चों को नहीं छोड़ा जा सकता।"

जर्मनी ने वारसा पर कब्ज़ा करके सारे यहूदियों को एक इलाके में इकट्ठा करके रखा जहां सब को मरना ही था। जिस अनाथालय को कोर-चौक चलाते थे, उसे भी यहीं लाया गया। यह जानते हुए भी कि वहां जाना खतरे से खाली नहीं था, कोर-चौक जर्मन सेना के दफ्तर गए और उस अनाथालय को उसी स्थान पर रहने देने की गुज़ारिश की। जब कहा गया कि उन्हें यहूदी बच्चों की फिक्र नहीं करनी चाहिए और उन्हें अपनी डॉक्टरी सेवा पोलिश मूल के बच्चों को देनी चाहिए तो कोर-चौक ने कहा कि वे यहूदी हैं। इस पर उन्हें जेल में डाल दिया गया और ऐसे ऊटपटांग व्यवहार के लिए उन पर मुकदमा चलाया गया।

अंत की शुरुआत

जैसा कि पहले भी होता आया था और बाद में भी होना था – उनके कुछ पुराने मित्रों ने उनको बचा लिया। उसके बाद वे लोग लगातार कोर-चौक को समझाने की कोशिश करते रहे कि वे घेट्टो से बाहर निकल आएं

और अपनी ज़िन्दगी बचा लें। उनके लिए नकली पहचान पत्र, भागने के रास्ते और छुपने की जगह, सबका इंतज़ाम हो गया। लेकिन कोर-चौक ने यह जानते हुए भी कि वहीं उनका अन्त होगा, बच्चों को छोड़कर जाने से इंकार कर दिया। अब वे उन बच्चों के लिए और ज़्यादा काम करने लगे। अपने पुराने सम्पर्कों और प्रभाव के इस्तेमाल द्वारा बच्चों के लिए भोजन और दवाओं का इंतज़ाम करते रहे। इस काम में उन्हें काफी सफलता मिली। यहां तक कि तस्कर गिरोहों के लोग भी उन्हें जानते थे और बच्चों की भरपूर मदद करते थे।

नाज़ियों ने 6 अगस्त, 1942 को यह आज्ञा दी कि यहूदी अनाथालय के बच्चों को रेल्वे स्टेशन ले जाया जाए। अब तक घेट्टो में रहने वाले लोगों को यह पता चल चुका था कि रेलगाड़ियां बच्चों को ट्रेबलिंका के गैस चैम्बर में, मारने के लिए ले जा रही थीं।

बच्चों के डर को कम करने के लिए कोर-चौक ने उन्हें बताया कि वे सब घूमने जा रहे हैं। निश्चित दिन हाथ में अनाथालय का झंडा लिए सबसे बड़ा बच्चा आगे-आगे चला। हमेशा की तरह कोर-चौक ने यह इंतज़ाम किया था कि एक बच्चा, न कि कोई बड़ा, नेतृत्व प्रदान करे। वे खुद दो सबसे छोटे बच्चों का हाथ पकड़ कर बड़े बच्चे के पीछे-पीछे चल रहे थे। इनके पीछे चले अन्य सब बच्चे, चार-चार के झुंड में पंक्तिबद्ध, पूरे आत्मविश्वास के साथ, जो उन्होंने अनाथालय में आकर पाया था।

जिन लोगों ने उन बच्चों को सीना तान कर जाते हुए देखा, उन्हें लगा मानो वे बच्चे अपने हत्यारों का मूक प्रतिवाद कर रहे थे। जब उनका जुलूस नियत जगह पर पहुंचा, तो पुलिस-कर्मी जो अब तक यहूदियों को गालियां देने और कोड़े बरसाने में व्यस्त थे, अचानक सजग होकर उन्हें सलामी देने लगे। जर्मन एस. एस. ऑफिसर जो उनका कमांडर था, डॉक्टर कोर-चौक और बच्चों के आत्मसम्मान के भाव से इतना प्रभावित हुआ कि वह आश्चर्य से पूछ बैठा, "यह अद्‌भुत व्यक्ति कौन है?" ऐसा कहा जाता है कि रेल्वे स्टेशन पर भी कोर-चौक को बचाने की कोशिशें हुई। एक पुलिस वाले ने उन्हें यह बताते हुए चले जाने को कहा कि सिर्फ बच्चों को रेलगाड़ी में चढ़ाने की आज्ञा हुई है। लेकिन कोर-चौक ने बच्चों से अलग होने से मना कर दिया और वे उनके साथ ट्रेबलिंका चले गए।

बूढ़ा डॉक्टर

इसके पहले कई वर्षों से डॉ. यानुस कोर-चौक सारे पोलैंड में 'बूढ़े डॉक्टर' के नाम से प्रसिद्ध थे। यह खिताब उन्होंने, बच्चों की शिक्षा पर रेडियो

प्रसारण करते हुए खुद ही दिया था। रेडियो के माध्यम से वे सब लोग भी उन्हें जान पाए जिन्होंने उनका कोई उपन्यास या नाटक नहीं पढ़ा था। एक उपन्यास के लिए उन्हें पोलैंड का सबसे बड़ा साहित्यिक पुरस्कार मिला था।

कोर-चौक के रेडियो प्रसारण सनसनीखेज साबित हुए क्योंकि उनसे प्रमाणित होता था कि एक वयस्क, एक बच्चे के संसार में आसानी से प्रवेश कर सकता था। कोर-चौक न सिर्फ बच्चों के संसार को समझते थे बल्कि उसकी कदर भी करते थे; जबकि अन्य वयस्क बच्चों की दुनिया के साथ न्याय नहीं कर पाते थे। जो बात कोर-चौक सबसे अच्छे से बता पाए वह भी उनकी एक महत्वपूर्ण कृति के शीर्षक 'बच्चे को कैसे प्यार करना चाहिए' से समझ में आती है।

कोर-चौक बच्चों को बहुत प्यार करते थे। उन्होंने बच्चों को ध्यान से देखा और समझा। चूंकि वे बच्चों को जानते थे, इसलिए उन्होंने उन्हें आदर्श नहीं समझा। जैसे बड़े लोग अच्छे और बुरे होते हैं, वैसे ही बच्चे भी हर तरह के होते हैं। सारी ज़िन्दगी उनके लिए और उनके बीच रहने व काम करने से कोर-चौक बच्चों को बच्चों की तरह देख सकते थे।

कोर-चौक हमारी शिक्षा व्यवस्था की आलोचना करते थे जो कि आज की तरह उस ज़माने में भी बच्चों को बहुत-सी बेमतलब की जानकारी के भार से दबा कर रखती थी; जबकि शिक्षा का मूल उद्देश्य होना चाहिए बच्चों को इस बात के लिए तैयार करना कि वे अपने वर्तमान यथार्थ को एक बेहतर भविष्य में बदल पाएं।

कोर-चौक को कोई शक नहीं था कि वयस्कों और बच्चों के बीच में शक्ति का संतुलन बिल्कुल गलत है, उसे बदलने की ज़रूरत है। वयस्क यह मान कर चलते हैं कि यह उनका अधिकार है कि वे बच्चों का जीवन और भविष्य निर्धारित करें; वह भी बच्चा क्या चाहता है यह जाने बगैर। कोर-चौक यह मानते थे कि वही शिक्षा जो बच्चों की पसन्द को ध्यान में रखती है, एक बेहतर विश्व का निर्माण कर सकती है। उनका इस बात में गहरा विश्वास था कि हर बच्चा अपना अंदरूनी संतुलन बनाए रखने के लिए खुद-ब-खुद अपने को जितना हो सके बेहतर बनाने की कोशिश करता है – अगर उसे अवसर मिले, स्वतंत्रता मिले और मौका मिले। बच्चों को यह अवसर देना उनका मुख्य उद्देश्य था।

कोर-चौक की तरह जो लोग बच्चों के लिए एक बेहतर विश्व का निर्माण करने की कोशिश करते हैं वे सामान्यतः अपने खुद के उदास बचपन की याद से प्रेरित होते हैं। जो उत्पीड़न उन्हें सहना पड़ा है इसका ऐसा असर उनके

जीवन पर पड़ता है। वे सारी ज़िन्दगी इस कोशिश में लग जाते हैं कि दूसरे बच्चों को वैसा ही कष्ट न झेलना पड़े।

बचपन – हेनरिक गोल्डश्मिट

यानुस कोर-चौक का असली नाम हेनरिक गोल्डश्मिट था। वे एक सुसंस्कृत और सुशिक्षित यहूदी खानदान से थे, एक ऐसा परिवार जिसने पोलिश समाज में मिल जाने के लिए यहूदी परंपरा से खुद को अलग कर लिया था। कोर-चौक के दादाजी एक प्रसिद्ध चिकित्सक थे, उनके पिताजी उतने ही प्रसिद्ध वकील थे। ऊपर से देखने पर ऐसा लगता है कि हेनरिक का बचपन अपने अमीर मां-बाप के घर पर काफी सुख चैन से गुज़रा। लेकिन बचपन से ही वे संवेदनात्मक समस्याओं से परिचित थे। उनके पिता अव्यवहारिक किस्म के व्यक्ति थे और सामान्य दुनिया के साथ जुड़ने में उन्हें काफी मुश्किल होती थी।

जब हेनरिक छोटे थे, तब हालांकि सतही तौर पर सब कुछ ठीक होना चाहिए था, तब भी उनका परिवार मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक और सामाजिक दृष्टि से अलगाव का सामना कर रहा था। शायद उनके पिता की मानसिक अस्थिरता का यही कारण था। जन्म से यहूदी, हेनरिक के मां-बाप को वह पोलिश संस्कृति भी नहीं अपना सकी जिसे उन्होंने स्वीकार किया था। साथ ही खुद को पोलिश संस्कृति का हिस्सा बनाने की फिराक में वे यहूदियों से भी दूर चले गए थे। पोलैंड में रहने वाले लगभग सभी यहूदी यिड्डिश भाषा बोलते थे और उनका जीवन यहूदी धार्मिक परंपराओं से निर्धारित होता था। वे जो कुछ भी सोचते और करते थे उस पर धर्म की छाप होती थी।

दूसरी तरफ हेनरिक के माता-पिता यहूदी धर्म को न मानने वाले यहूदी थे, जो सिर्फ पोलिश बोलते थे। इसलिए हालांकि हेनरिक की अच्छी परवरिश हुई लेकिन वह बचपन से ही 'अलग होने' का मतलब जानते थे। वे सारी ज़िंदगी एक 'आउटसाइडर' ही रहे।

जब हेनरिक ग्यारह वर्ष के थे तो उनके पिताजी को मानसिक रोग से पीड़ित होने की वजह से मानसिक रोगों के अस्पताल में रखना पड़ा। वहीं पर उनकी मृत्यु हो गई। तब हेनरिक की उम्र अठारह वर्ष थी। पिता की मौत के बाद परिवार को आर्थिक तंगी से गुज़रना पड़ा। तभी से हेनरिक को परिवार की देखभाल करनी पड़ी। स्कूल में पढ़ते वक्त वे ट्यूशन करके अपना खर्च चलाते थे। जब कॉलेज में पहुंचे तो कहानियां और लेख लिखकर वे बहन, मां और खुद का खर्च चलाते थे।

इसी काल में उन्होंने खुद के लिए एक नया नाम अपनाया। एक

साहित्यिक प्रतियोगिता में हिस्सा लेने के लिए उन्होंने यह पोलिश नाम इसलिए अपनाया क्योंकि उन्हें डर था कि उनके यहूदी नाम के चलते कोई पुरस्कार नहीं मिलेगा। यानुस कोर्-चौक नाम उन्होंने एक उपन्यास से लिया था जो कि वे उन दिनों पढ़ रहे थे। हालांकि वे उस साहित्यिक प्रतियोगिता को नहीं जीत पाए लेकिन यह नया नाम इस्तेमाल करते रहे।

भविष्य के सपने

इस समय तक हालांकि वे चिकित्सा शास्त्र की पढ़ाई कर रहे थे लेकिन उन्होंने यह निश्चित कर लिया था कि वे बच्चों की बेहतरी के लिए काम करेंगे। कोर-चौक बच्चों की स्वतंत्रता के लिए कृत-संकल्प थे; क्योंकि बच्चों के साथ बड़े जिस तरह का व्यवहार करते थे उसमें भी आमूल परिवर्तन की ज़रूरत थी। जब कोर-चौक से यह पूछा गया कि बच्चों की स्वतंत्रता का क्या मतलब होता है तो उन्होंने बताया कि इसका सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा होगा बच्चों को खुद का जीवन चलाने की स्वतंत्रता देना। इस शुरुआती दौर में भी वे निश्चित थे कि बच्चे खुद की ज़िंदगी कम-से-कम उतने अच्छे से तो चला ही सकते हैं जितने कि माता-पिता या शिक्षा -विद।

अपनी पढ़ाई के दौरान कोर-चौक को यह महसूस हुआ कि वे बच्चों की देखभाल 'बच्चा रोग विशेषज्ञ' होकर अच्छे से कर पाएंगे, इसलिए उन्होंने इसकी पढ़ाई की। कोर-चौक शुरू-शुरू में ही यह निश्चित कर चुके थे कि वे विवाह नहीं करेंगे क्योंकि वे अपने बच्चे नहीं चाहते थे। जब कॉलेज के मित्रों ने उनसे पूछा कि बच्चों से इतने प्यार के बावजूद वे अपने बच्चे क्यों नहीं चाहते, तो उनका जवाब था कि उनके कुछ नहीं बल्कि सैकड़ों बच्चे होंगे जिनकी वे देखभाल करेंगे।

पहला उपन्यास

एक मेडिकल छात्र के रूप में कोर-चौक वारसा की झुग्गी-झोंपड़ी वाली बस्तियों में काम किया करते थे। उन्हें उम्मीद थी कि वे बच्चों के आध्यात्मिक विकास के साथ मेडिकल चिकित्सा व शारीरिक इलाज के द्वारा उनके जीवन में मूलभूत परिवर्तन ला पाएंगे। उनका पहला उपन्यास 'गली के बच्चे' 1901 में छपा। यह उपन्यास अमानवीय जीवन जीने को मजबूर बच्चों का जीवन के प्रति आक्रोश व्यक्त करता है।

सन् 1905 में मेडिकल डिग्री पाने के बाद कोर-चौक बच्चों के एक अस्पताल में काम करते हुए रहने लगे। साथ-साथ वे साहित्यिक, मेडिकल और सामाजिक-आर्थिक विषयों पर लेखन का काम भी करते थे। उनका एक और उपन्यास 'द चाइल्ड ऑफ द सेलोन' उनके अपने अनुभवों पर

आधारित था। उपन्यास में उन्होंने ऐसे सवाल उठाए जो उनके मन में पांच साल की उम्र से ही उठ रहे थे; जब उन्होंने समझा था कि रुपये-पैसे ही नहीं होने चाहिए, तब शायद कोई भूखा नंगा बच्चा नहीं होगा।

जब 1905 में रूस और जापान के बीच लड़ाई छिड़ गई तब कोर-चौक को सेना में डॉक्टर का काम करना पड़ा। यह अनुभव उन्हें काफी बुरा लगा लेकिन इस अनुभव ने उन्हें गरीब जनता के और भी करीब ला दिया। अगले आठ वर्षों में धीरे-धीरे उन्होंने डॉक्टरी का पेशा छोड़ दिया जिससे कि वे अपना सारा समय बच्चों के साथ गुज़ार पाएं। उन्होंने अपने जीवन में आए इस बदलाव के बारे में यह लिखा 'अरंडी के तेल का एक चम्मच गरीबी और मातृ-पितृ-हीनता का इलाज नहीं हो सकता।'

इसलिए 1912 में तीस साल के आसपास की उम्र में कोर-चौक वारसा में यहूदी अनाथालय के निदेशक बन गए। उन्होंने बच्चों के अस्पताल में काम बंद कर दिया। उसके बाद से अपने जीवन के अंत तक वे इसी अनाथालय में काम करते रहे। इसमें रोक सिर्फ एक बार आई जब उन्हें प्रथम विश्व युद्ध के दौरान रूसी सेना के लिए डॉक्टर का काम करना पड़ा। इस दौरान उनके पास खुद के लिए कोई समय नहीं बचता था। कठिन श्रम के इस जीवन में भी रात में सोने के बजाय, उन्होंने अपनी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'बच्चे को कैसे प्यार करना चाहिए' लिख डाली।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद वे एक कैथोलिक अनाथालय के भी सह-निदेशक बन गए जिसका नाम उन्होंने 'अपना घर' रखा। इसमें यहूदी और कैथोलिक बच्चे रहते थे। बच्चों पर कोर-चौक के ज़्यादातर लेख इस बात को समझने की कोशिश करते हैं कि बच्चों को कैसे समझा जाए और उनसे कैसे जुड़ा जाए, कैसे उनका सम्मान किया जाए और कैसे उन्हें प्यार किया जाए। उनके लेख बच्चे के बदलते हुए व्यक्तित्व की सजीवता को दिखाते हैं।

वारसा के एक इंस्टीट्यूट में पढ़ाने के लिए वे अपने छात्रों को एक्स-रे मशीन के द्वारा बच्चे के दिल की धड़कन दिखाते थे। बच्चा एक अंधेरे कमरे में स्क्रीन के पास खड़ा होता था और इस अनजानी जगह पर वह अंधेरे, अजीबो-गरीब मशीन और अजीबो-गरीब जगह के चलते, डरा रहता था। हल्की आवाज़ में (बच्चे को बिना और ज़्यादा डराए) अपने छात्रों को ध्यान से देख यह कभी न भूलने को कहते हुए बताते थे, "देखो जब बच्चा डरा रहता है तो कैसे तूफान की तरह उसका दिल धड़कता है, और यदि कोई बड़ा उस पर गुस्सा हो जाए तब वह और तेज़ी से धड़कता है, और सज़ा के डर

की तो बात ही मत करो।"

नई धारणाएं

कोर-चौक की कई धारणाएं आज सर्वसम्मत हैं लेकिन बीसवीं सदी की शुरुआत में क्रांतिकारी रूप से नई थीं। उन्होंने बार-बार इस बात की ज़रूरत पर बल दिया कि बच्चे को और उसके विचारों को आदर देना चाहिए, तब भी जब आप उससे सहमत न हों। उन्होंने ऐसे शैक्षिक हस्तक्षेप को गलत बताया जो हमारी इस समझ पर आधारित है कि बच्चे को भविष्य में क्या जानना चाहिए। सच्ची शिक्षा बच्चे के वर्तमान पर आधारित होगी न कि इस बात पर कि भविष्य में वह क्या हो।

हम आज यह नहीं समझ पाते कि ये आधुनिक सिद्धांत किस हद तक कोर-चौक के विचारों से निकले हैं। इनमें से कुछ विचार ड्यूयी जैसे शिक्षाविदों ने भी व्यक्त किए थे। लेकिन जहां ड्यूयी सिर्फ सिद्धांत देते रहे कोर-चौक ने इन विचारों को दिन प्रतिदिन के जीवन में उतारने की कोशिश की।

इसी तरह समरहिल के नील ने भी अपने परीक्षण लगभग दस साल बाद शुरू किए। नील की समझ भी कोर-चौक के विचारों से प्रभावित थी। लेकिन नील भी, जो बच्चों की शिक्षा के क्षेत्र में सबसे क्रांतिकारी बदलाव लाना चाहते थे, कोर-चौक जितना आगे नहीं बढ़े। कोर-चौक यह मानते थे कि बच्चे खुद अपने ऊपर शासन करें। कोर-चौक की सहायता से बच्चों ने एक कोर्ट बनाया और वे खुद भी उसके निर्देशों को मानते थे।

बच्चों का कोर्ट

कोर-चौक इस बात को समझते थे कि बच्चों के प्रति बहुत लगाव होने पर भी, वे खुद एक त्रुटिपूर्ण प्रक्रिया से पाले पोसे गए थे, इसलिए उनमें कमियां थीं। इसलिए व्यक्तिगत रूप से उनके लिए बच्चों की संसद, अखबार या अन्य स्वतंत्र गतिविधियों से भी ज़्यादा महत्वपूर्ण था उनका कोर्ट। उन्होंने बताया है कि छः महीने में पांच बार उनके खिलाफ शिकायत हुई। एक बार भावना में आकर उन्होंने एक बच्चे को थप्पड़ मारा जब उसने उन्हें बहुत परेशान किया। उन्होंने फौरन अपनी गलती स्वीकार की कि बच्चे का व्यवहार कितना भी बुरा क्यों न हो उसे थप्पड़ नहीं मारा जा सकता। उनका दूसरा दुर्व्यवहार था एक शोर मचाने वाले बच्चे को सोने वाली जगह से बाहर निकाल देना जिससे कि दूसरे बच्चों की नींद में खलल न पड़े। उनका दोष था – बच्चों के लिए खुद निर्णय ले लेना। उन्हें बच्चों से पूछना चाहिए था कि क्या वे एक बच्चे को भगाकर सोना चाहेंगे। एक दूसरे मौके पर बच्चों के कोर्ट ने उन्हें दोषी करार दिया

क्योंकि उन्होंने मुकदमे के समय एक बाल-न्यायाधीश का अपमान किया था। एक और मौके पर उन्होंने एक लड़की को चोर कहा था।

एक बाल-न्यायाधीश ने पांचवे मुकदमे के बारे में खुद के अनुभव लिखे हैं। कोर-चौक ने मज़ाक में एक बच्ची को पेड़ के ऊपर बैठा दिया, जब वह डर गई तो उन्होंने उसका मज़ाक उड़ाया था। बच्चों की कोर्ट की धारा 100 के तहत कोर-चौक को दोषी पाया गया। जजों का निर्णय था, "हालांकि मुज़रिम ने न कोई सफाई दी है, न ही अपने व्यवहार को सही करार दिया है, कोर्ट उन्हें दोषी ठहराता है।" जैसे ही यह फैसला सुनाया गया, जिस लड़की ने कोर-चौक पर यह आरोप लगाया था, रोते हुए उनके गले से लिपट गई।

ऐसी व्यवस्था में हम यह न समझ लें कि अनाथालय का जीवन काफी उल्टा-पुल्टा था। बच्चों का स्वशासन और कोर्ट, व्यवस्था को बनाए रखते थे। कोर-चौक जानते थे कि अच्छा जीवन जीने के लिए सबसे आवश्यक होता है स्वशासन।

'बूढ़ा डॉक्टर' न सिर्फ बच्चों के निर्णय को कोर्ट में स्वीकार करता था, बल्कि वे जो भी करते थे उसमें बच्चों की राय जानना चाहता था। वे अपनी किताबों से पढ़कर सुनाते थे और उनकी राय मांगते थे, जिसे वे काफी महत्व देते थे। उन्होंने कहीं लिखा है कि बच्चे उनके सबसे बड़े शिक्षक थे और उन्होंने जो भी कुछ सीखा था उन्हीं से सीखा था।

कोर-चौक का जीवन दर्शन अनाथालय के बच्चों के पास हो जाने के समय उनके विदाई भाषण में स्पष्टत: झलकता है। उन्होंने कहा:

"हम आप सब को दूर देश के लंबे सफर के लिए विदा देते हैं। यह सफर है जीवन का सफर। हम बहुत सोचते रहे कि हम आपको कैसे अलविदा कह पाएंगे, सफर पूरा होने के लिए क्या सलाह देंगे। दुर्भाग्य से हमारी बातें बताने के लिए शब्द कमज़ोर पड़ जाते हैं। इसलिए हम रास्ते के लिए कुछ भी नहीं कह पाते।

हम तुम्हें कोई ईश्वर नहीं देते क्योंकि उन्हें तो आप एकाकी संघर्ष के बाद खुद की आत्मा में खोज पाएंगे। हम आपको कोई मातृभूमि भी नहीं दे रहे क्योंकि वह तो आपको खुद के दिल से पूछकर अपनी सोच के आधार पर खोजकर निकालना है। न ही हम आपको आम लोगों के लिए प्यार का रास्ता दिखाते हैं क्योंकि बिना क्षमाशीलता के प्यार नहीं हो सकता और क्षमा करना मेहनत का काम है, जिसके बारे में व्यक्ति खुद ही निर्णय ले सकता है।

हम आपको सिर्फ एक चीज़ देते हैं

– एक इच्छा, बेहतर जीवन के लिए; ऐसा जीवन जो अभी है नहीं लेकिन एक दिन आएगा। एक जीवन जो सत्य और न्याय पर आधारित होगा। शायद यही इच्छा आपको ईश्वर तक, असली मातृभूमि तक और प्यार तक पहुंचाएगी। इसे मत भूलो।"

दूसरे बच्चों और बड़ों का घातक अकेलापन दूर करने के लिए उन्होंने एक उपन्यास लिखा 'जब मैं दुबारा छोटा हो जाऊंगा'। इस किताब में वे एक साथ एक बड़े और छोटे के रूप में, शिक्षक और छात्र के रूप में लिखते हैं, जिसमें वे एक दूसरे की समस्याएं, खुशियां और गम समझने की कोशिश करते हैं। लेकिन यह पुस्तक अपने प्रयोजन में उतनी सफल नहीं हुई जितनी कि उन्हें उम्मीद थी।

मशहूर पुस्तक – राजा मैट प्रथम

इसलिए कोर-चौक ने एक बार फिर कोशिश की और उन्होंने अपनी सबसे प्रसिद्ध पुस्तक 'राजा मैट प्रथम' लिखी जो 1928 में छपी। 'राजा मैट प्रथम' की कहानी एक बच्चे की है जो अपने पिता की मृत्यु पर राजा बनता है। गद्दी पर बैठते ही वह कई तरह के सुधार लाता है जिससे बच्चों और बड़ों की हालत सुधरे।

राजा मैट एक बच्चे के रूप में कल्पित कोर-चौक ही है जो दुनिया में अन्याय के खिलाफ साहस से संघर्ष कर रहा है। खासकर ऐसे जुर्म के खिलाफ जो बच्चों पर ढाए जाते हैं। सारी कथा इस बच्चे के नज़रिए से कही जाती है जो हमेशा एक बच्चा होते हुए भी बड़ी हिम्मत के साथ अपने लक्ष्य को पाने की कोशिश करता है। हमारी जैसी दुनिया को दुबारा से बनाने की कोशिश करता है जो बच्चों के लिए अच्छी हो; वैसा करते हुए बड़ों के लिए भी एक बेहतर दुनिया बनाने की कोशिश करता है। इस कहानी में कोर-चौक एक वयस्क के रूप में भी आते हैं – एक बूढ़े डॉक्टर के रूप में जिसे राजा मैट को आने वाली मुसीबतों का पूर्वाभास है और जिसका दिल राजा मैट के लिए पसीजता है। बूढ़ा डॉक्टर राजा मैट की सहायता करने की असफल कोशिश करता है। उसकी दुनिया बच्चों की ज़रूरतों के लिए संवेदनशील है। दुनिया यह नहीं समझती कि बच्चों के लिए क्या सही है, न ही उनकी निश्छलता, न ही उनकी खुद की देखभाल करने की क्षमता, न ही इस बात को समझती है कि कैसे वे हम सबके लिए एक बेहतर विश्व बनाने में योगदान कर सकते हैं।

जो बात इस कथा को अनोखा बना देती है वह है बच्चों के चिंतन के बारे में इसकी खूबसूरत समझ, साथ-साथ उनकी तमाम योजनाओं की अव्यवहारिकता भी, जिसके चलते

अन्ततः वे असफल होते हैं। इस कथा में आधुनिक विश्व के सामान्य अस्तित्व के साथ काल्पनिक विश्व की सृष्टि की गई है, जो एक बेहद कुशाग्र बुद्धि के कल्पनाशील, सचेत और ईमानदार बच्चे की उम्मीदों और कल्पनाओं का परिणाम है।

'राजा मैट प्रथम' एक अनूठी किताब इसलिए है कि इसमें बच्चा बड़ों की दुनिया को कैसे समझता है यह दिखाने की कोशिश की गई है। साथ-साथ यदि वह स्वतंत्र हो तो उसकी प्रतिक्रिया कैसे होती है। मैट के अनुभवों के माध्यम से कथा यह दिखाती है कि किस तरह बच्चा बार-बार बड़ों पर विश्वास करता है और बार-बार हताश होता है। उपन्यास यह दिखाता है कि वयस्क लोग एक दूसरे के साथ कितना कुटिल व्यवहार करते हैं। साथ-साथ वह यह भी दिखाता है कि वे वयस्क जो अच्छे होते हैं, वे भी बच्चों की ज़रूरतों और उम्मीदों को नहीं समझ पाते। सबसे बड़ी बात यह है कि यह कथा बताती है कि बच्चों में दुनिया को समझने के लिए गंभीरता और भोली-भाली बुद्धिमता एक साथ मिले होते हैं; और उनमें बड़ों तथा हमउम्र बच्चों के साथ एक गहरे रिश्ते की ज़रूरत होती है, क्योंकि उन्हें ज़रूरत होती है कल्पनाओं के संसार की, स्वतंत्र, मर्यादापूर्ण और उत्तरदायी जीवन की।

राजा मैट के सुधारों की सूची काफी कुछ दर्शाती है। इन सुधारों में व्यक्तिगत कारणों से मुझे एक सुधार बड़ा पसन्द आया – बच्चों के बड़ों के द्वारा चूमे जाने पर रोक बनाना। मैंने कई वर्षों पहले कोर-चौक की बात जाने बिना, यह बात कही थी कि जहां भी बच्चे इस बारे में अपनी बात बताने की हिम्मत करते हैं, सब के सब इस बेमतलब के चूमे जाने से नफरत करते थे। लेकिन मेरा सुझाव बेहद नापसन्द किया गया। इस अनुभव ने मुझे सिखाया कि बड़ों को यह बताना कितना मुश्किल है कि बच्चे दुनिया को अलग ढंग से देखते हैं। साथ ही यह भी समझ में आया कि बड़े कितनी आसानी से अपना बचपन भूल जाते हैं।

ज़्यादातर वयस्क लोग बिल्कुल निश्चित हैं कि जो चीज़ उनके लिए प्यार जताने का एक तरीका है, बच्चों के लिए भी वो वही होगा। बच्चे शारीरिक संपर्क को पसन्द करते हैं, लेकिन वैसे रूप में नहीं जो वयस्क कामुकता का हिस्सा है जैसे चूमना – बल्कि वे पसन्द करते हैं प्यार से थामना, उठाना, गले लगाना आदि। अपने वक्तव्यों में कोर-चौक हमेशा बताते थे कि जब बड़े, बच्चों को वैसा प्यार जताते हैं जैसा बच्चे चाहते हैं तो वे बड़े खुश होते हैं; क्योंकि उन्हें लगता है कि बड़े उन्हें गंभीरता से ले रहे हैं और बराबरी के स्तर पर खेल रहे हैं।

कहानी खत्म होती है जब राजा मैट के बहुत मेहनत से लागू किए किन्तु बचकाना सुधार वयस्कों के विश्वासघात के चलते विफल हो जाते हैं; क्योंकि बच्चे आखिर बच्चे हैं, वे भी बचकानेपन में, बिना ध्यान दिए और कभी-कभी स्वार्थपन में योजना लागू करने की कोशिश करते हैं।

अलग-थलग पड़ते गए

कोर-चौक बच्चों से जितना हिलते मिलते गए, बाहरी दुनिया से उतना ही कटते गए। यह कहा गया कि उनके यहूदी माता-पिता ने जिस पोलिश संस्कृति को अपनाया था वह उनके लिए अजनबी थी। वे यहूदियों के लिए भी अजनबी थे क्योंकि उन्होंने पोलिश संस्कृति अपना रखी थी। यह अलगाव कोर-चौक को अपने माता-पिता से मिला था, इस वजह से पोलैंड के दक्षिणपंथी कोर -चौक को अतिवादी समझ कर संदेह की दृष्टि से देखते थे। पोलैंड के वामपंथियों से भी वे अलग-थलग पड़ गए क्योंकि वे सब कुछ भूलकर सिर्फ बच्चों की स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ रहे थे और यह नहीं मानते थे कि सर्वहारा क्रांति से बच्चों की हालत अपने आप ठीक हो जाएगी।

हालांकि साहित्य के क्षेत्र में उन्हें काफी सफलता मिली थी लेकिन वहां के साहित्यिक समूह भी उन्हें संदेह की दृष्टि से देखते थे, क्योंकि वे किसी साहित्यिक आंदोलन का हिस्सा नहीं थे, न ही उनसे उन्हें प्रेरणा मिली थी। उनकी प्रेरणा के स्रोत तो बच्चे थे। शिक्षाविद् उनसे घबराते थे और उनके तरीकों को अस्वीकार करते थे क्योंकि कोर-चौक उनकी प्रणाली को बिल्कुल गलत करार देते थे। इस वयस्क चक्र से अलग-थलग कोर-चौक बच्चों के और करीब आ गए – बच्चे जो बड़ों की दुनिया से अलग हो चुके थे। लेकिन कोर-चौक के समूचे जीवन का लक्ष्य जिसके लिए वे दिन रात कार्यरत रहे, बच्चों और बड़ों की दुनिया के दुराव को कम करना था।

॰ट्टा डायरी

1939 में जब जर्मनी ने पोलैंड पर हमला किया तो कोर-चौक को पता चल गया कि अन्त नज़दीक है। उनकी उदासी और निराशा बढ़ती गई और उन्हें लगा कि उन्हें अपनी अन्तिम बातें लिख डालनी चाहिए। घेट्टो में अपने जीवन के अन्तिम दिनों, खासकर 1942 साल के मई से अगस्त महीने तक उन्होंने जो बातें लिखीं वे उनके शब्दों में, "वास्तव में यह अनेक प्रयोगों के निष्कर्ष निकालने का प्रयास नहीं है बल्कि अनेक प्रयोगों, प्रयासों, गलतियों की कब्रगाह है। शायद पचास वर्ष बाद किसी को कभी इसमें कुछ काम का मिले।" यह एक भविष्यवाणी साबित हुई क्योंकि कुछ ही दिनों में

बूढ़े डॉक्टर के यह वाक्य पचास साल पुराने हो जाएंगे और अब उनकी बातें ज़्यादा लोगों को मालूम हैं, ज़्यादा लोग उसे समझते हैं और ज़्यादा लोग उसे पसन्द करते हैं।

जुलाई 1942 में कोर-चौक की हत्या के लगभग एक मास पहले उनके दोस्तों और शिष्यों ने उन्हें बचाने का एक और प्रयास किया। उनके मित्र इगोर न्यूअर्ली ने उनके लिए नकली कागज़ात तैयार कर लिए। इनकी सहायता से कोर-चौक घेट्टो से बाहर आ सकते थे। न्यूअर्ली की मनुहार पर भी कोर-चौक बच्चों को छोड़ घेट्टो से बाहर आने को तैयार नहीं हुए। लेकिन न्यूअर्ली के प्रयासों के लिए कृतज्ञता दिखाने के लिए कोर्याक ने घेट्टो में बिताए दिनों की अपनी डायरी उनके पास भेजने का वचन दिया।

हमेशा की तरह कोर-चौक ने अपना वचन निभाया और बच्चों के साथ ट्रेबलिंका ले जाए जाने के कुछ दिनों के बाद न्यूअर्ली के पास वह डायरी पहुंच गई। उन्होंने वह डायरी एक जगह ईंटों की चिनाई करके रख दी और युद्ध खत्म होने के बाद उसे फिर से निकाला। यह 'घेट्टो डायरी' के नाम से छपी है और 'राजा मैट्ट' के अलावा अंग्रेज़ी भाषा में उपलब्ध कोर-चौक की एकमात्र किताब है।

डायरी में कोर-चौक बताते हैं कि घेट्टो के दर्शकों के लिए उन्होंने अपने पूरे ग्रुप की हत्या के ठीक पहले बच्चों से अन्तिम बार कौन-सा नाटक करवाया। हालांकि आर्य लेखकों के नाटक यहूदी लोगों द्वारा किए जाने पर रोक थी, जो नाटक चुना गया वह था टैगोर का 'पोस्ट ऑफिस'। हमेशा की तरह कोर-चौक ने जर्मन पुलिस द्वारा नियम तोड़ने के लिए सज़ा की संभावना को नज़रअंदाज़ कर दिया था। इस कथा का नायक एक मरणासन्न बच्चा है जिसका मरना उसके लिए इसलिए सहज हो जाता है कि उसे यह विश्वास दिलाया जाता है कि राजा उससे मिलने आएंगे और राजा उसकी सबसे प्रिय आकांक्षा पूर्ण करेंगे। कोर - चौक ने इसी कारण से यह नाटक चुना होगा क्योंकि वे बच्चों के लिए मौत के इंतज़ार की दु:सह पीड़ा को कम करना चाहते थे। नाटक के बाद उनसे पूछा गया कि उन्होंने क्यों यह कहानी चुनी, तो उन्होंने बताया कि अन्तत: हर व्यक्ति को मौत के फरिश्ते को स्वीकार करना पड़ता है।

कोर-चौक ने यह सीख लिया था और उन बच्चों को भी उन्होंने यह सीख दी। अपनी घेट्टो डायरी के अन्तिम पन्ने पर उन्होंने लिखा है, "मैं किसी पर गुस्सा नहीं हूं, मैं किसी का बुरा नहीं चाहता क्योंकि मुझमें यह क्षमता नहीं है। मुझे पता नहीं किसी का बुरा कैसे मनाया जा सकता

है।" उनसे जब यह पूछा गया, "जब सब लोग अमानुषिक हो गए हों तो इंसान को क्या करना चाहिए?" उनका जवाब था, "उसे और ज़्यादा मानवीय हो जाना चाहिए।" अंत तक कोर-चौक ने यही किया।

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद यानुस कोर-चौक, उनका जीवन और उनकी रचनाएं न सिर्फ पोलैंड में, बल्कि दूसरी जगहों पर भी चर्चा के विषय बन गए। उनकी रचनाएं यूरोप के विश्वविद्यालयों में पढ़ाई जाती हैं और उनके कार्यों पर बड़ी-बड़ी गोष्ठियां आयोजित होती हैं। उनके सम्मान में कई इमारतें बनाई गई हैं। 'कोर-चौक और बच्चे' नाम का एक नाटक भी कई जगहों पर दिखाया गया है। उनकी किताबों के ऊपर किताबें लिखी गई हैं। उनकी रचनाओं को दुबारा छापा गया है और कई भाषाओं में उनका अनुवाद भी हुआ है। उन्हें मरणोपरान्त जर्मनी का शान्ति पुरस्कार दिया गया। यूनेस्को ने जन्म शताब्दी पर 1978-79 को कोर्याक का वर्ष घोषित किया।

ट्रेबलिंका में 8,40,000 यहूदियों की हत्या की गई थी। जहां उन्हें मारा गया था वहां पर लगे खंडित पाषाण उनकी याद के स्मारक हैं। इन पत्थरों पर इसके सिवाय कुछ भी नहीं लिखा कि मारे गए लोग किस शहर या किस देश से आए थे। सिर्फ एक शिलालेख है जिस पर लिखा है "यानुस कोर-चौक (हेनरिक गोल्डश्मिट) और बच्चे।" मुझे लगता है कि कोर-चौक आज के दिन इसी रूप में याद किया जाना पसन्द करते, बच्चों के सबसे अच्छे दोस्त।

यह लेख ब्रुनो बेटेलहाइम की पुस्तक 'रिफलेक्शन्स एंड रिकलेक्शन्स' में दी गई यानुस कोर-चौक की जीवनी पर आधारित है।

अनुवाद व रूपांतरण: पी. के. बसंत। दिल्ली के जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय में इतिहास पढ़ाते हैं।

संदर्भ मराठी भाषा में भी

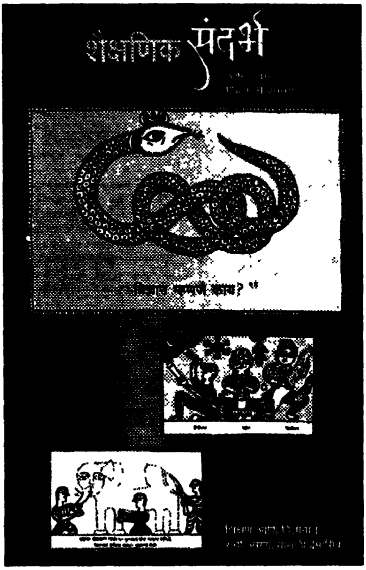

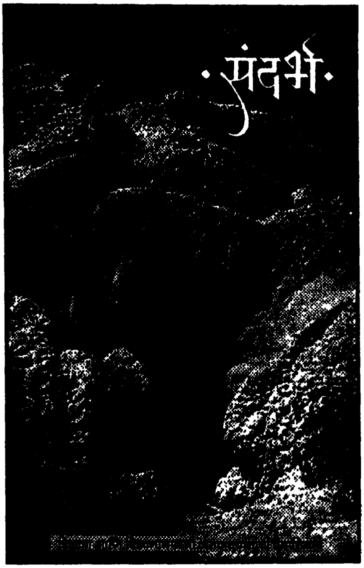

विगत दो वर्षों से पुणे से संदर्भ मराठी भाषा में भी
प्रकाशित हो रही है।

एक प्रति का मूल्यः 20 रुपए
वार्षिक सदस्यता शुल्कः 100 रुपए
पुराने अंकों का सजिल्द संस्करण (अंक 1-6) उपलब्ध हैं
मूल्यः 130 रुपए।

मराठी संदर्भ का सदस्यता शुल्क बैंक ड्राफ्ट
या मनीऑर्डर से भेज सकते हैं।

संपर्क करें:
संदर्भ, द्वारा पालकनीती
अमृता क्लिनिक, संभाजी पुल कोपरा
कर्वे रोड़, पुणे, पिनः 411004
फोनः 5441230, ई-मेलः karve@wmi.co.in

समस्त संदर्भ सजिल्द उपलब्ध

पिछले छः अंकों में प्रकाशित सामग्री एक साथ। साथ में एक विषयवार इंडेक्स जो किसी भी लेख को तुरन्त आपके सामने ले आए।

पिछले छः सालों में प्रकाशित सामग्री संदर्भ के छः सजिल्द में समेटी गई है।
संदर्भ अंक 1-6, 7-12, 13-18, 19-25, 26-30 और 31-36 के सजिल्द संस्करण उपलब्ध हैं।

प्रत्येक का डाक-खर्च सहित मूल्य 75 रु.।

राशि डिमांड ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से भेजें।
ड्राफ्ट एकलव्य के नाम से बनवाएं।
अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें।

एकलव्य
कोठी बाजार
होशंगाबाद, म. प्र. 461001
ई - मेल: eklavyah@yahoo.com

एकलव्य
ई-7/453 एच. आइ. जी., अरेरा कॉलोनी
भोपाल - 462016
ई - मेल: eklavyamp@vsnl.com

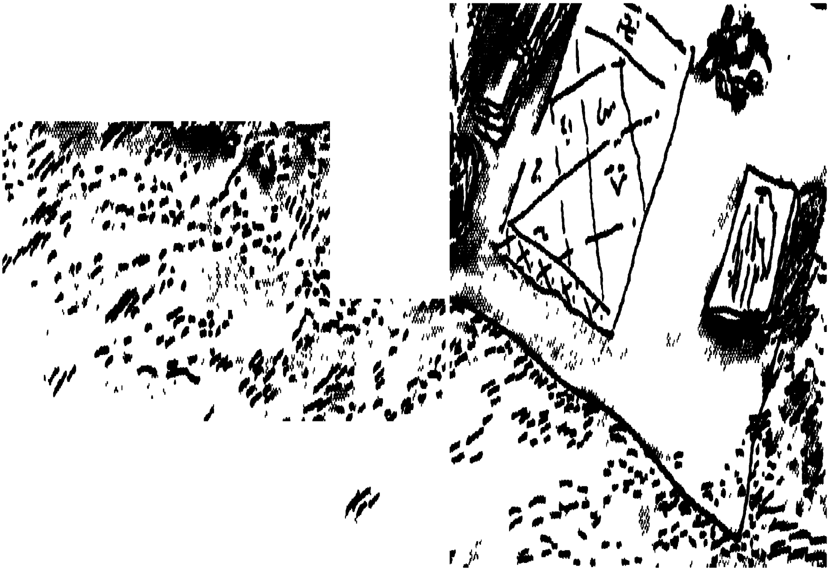

ज्योतिषी का नसीब

आर. के. नारायण

ठीक मध्यान्ह के वक्त उसने अपना झोला खोलकर, अपने व्यावसायिक उपकरण सजा लिए। एक दर्जन कौड़ियां, एक चौकोर कपड़ा जिस पर रहस्यमय चार्ट बने हुए थे, एक नोट बुक और ताड़ पत्रों का एक पुलिंदा। उसका ललाट भभूत और सिन्दूर से सुसज्जित था, और उसकी आंखों में एक असामान्य पैनी चमक थी। दरअसल यह चमक निरंतर ग्राहकों को ताड़ने के प्रयास से उत्पन्न हुई थी, किन्तु सीधे-सादे ग्राहकों को लगता था कि यह पूर्वाभास का नूर है। इससे उन्हें बहुत सुकून का एहसास होता था। उसकी आंखों का तेज, उनकी स्थिति के कारण और भी बढ़ जाता था – पुते हुए ललाट और काली मूंछों व दाढ़ी के बीच स्थित ये आंखें यदि किसी सिरफिरे की होतीं, तो भी चमकने लगतीं।

इस रौब पर चार चांद लगाने के लिए उसने सिर पर एक भगवा पगड़ी और बांध ली थी। यह रंग-विन्यास कभी असफल नहीं रहा था; लोग उसकी ओर ठीक उस तरह आकर्षित होते थे जैसे मधुमक्खियां फूलों से लदी डाली की ओर। वह एक विशाल इमली के पेड़ की एक डाल के नीचे बैठता था। यह डाल टाउन हॉल पार्क के एक रास्ते पर फैली हुई थी। यह जगह कई मायनों में असाधारण थी। सुबह से लेकर रात तक इस संकरी सड़क पर लोगों की आवाजाही रहती थी। इस पूरे रास्ते पर तमाम किस्म के कारोबार और व्यवसाय चलते थे: दवा विक्रेता, चोरी के हार्डवेयर और कबाड़ के विक्रेता, जादूगर। खासतौर से, एक सस्ते कपड़े नीलाम करने वाला पूरे शहर को आकर्षित करने के लिए दिन भर शोर मचाता रहता था। शोरगुल में उससे कोई टक्कर ले सकता था, तो वह था एक मूंगफली वाला। यह मूंगफली वाला उसके दाईं ओर बैठता था और रोज़ाना अपनी मूंगफली को नया नाम दे देता था। किसी दिन वह उन्हें 'बंबई की आइसक्रीम' कहता तो अगले दिन 'दिल्ली का बादाम' और फिर 'राजा का पकवान'। लोग उसके पास खिंचे चले आते थे।

इस भीड़ में से काफी सारे लोग ज्योतिषी के सामने भी ठिठक जाते थे। ज्योतिषी अपना कारोबार एक ढिबरी की रोशनी में करता था। यह ढिबरी चटचट की आवाज़ के साथ जलती थी और इसका धुआं मूंगफली के ढेर से ऊपर तक पहुंचता था। इस जगह का आधा मज़ा तो इसी बात में था कि यहां नगर पालिका की प्रकाश व्यवस्था नदारद थी। पूरी जगह दुकानों की रोशनी से ही प्रकाशित रहती थी। एकाध दुकान में सीं-सीं करती गैस बत्तियां थीं, कुछ के पास नंगी मशालें थीं जिन्हें वे खंबों पर बांध देते थे, कुछ के पास पुरानी सायकल बत्तियां

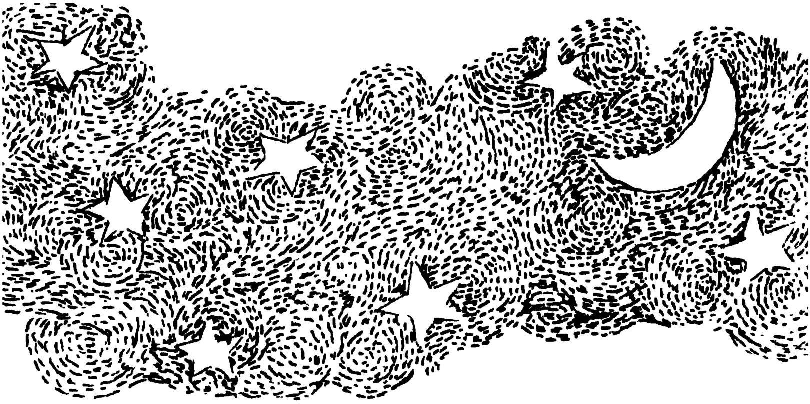

थीं; जबकि एकाध दुकानदार अपनी रोशनी का इंतज़ाम किए बगैर ही काम चला लेता था।

पूरी जगह प्रकाश किरणों और चलते-फिरते सायों के असमंजसकारी ताने-बाने में डूबी रहती थी। यह ज्योतिष के मन माफिक ही था क्योंकि इससे उसके व्यक्तित्व और उसकी उक्तियों का प्रभाव कई गुना बढ़ जाता था। अपने व्यवसाय में सफलता के लिए उसे इस सब पर निर्भर रहना पड़ता था। कारण यह था कि अपने जीवन की शुरुआत करते वक्त उसने सपने में भी ज्योतिषी बनने की बात नहीं सोची थी। औरों के भविष्य की तो बात छोड़िए, उसे तो यह भी पता नहीं होता था कि खुद उसके साथ अगले क्षण क्या घटने वाला है। वह भी ग्रह–नक्षत्रों से उतना ही अनभिज्ञ था जितने उसके ग्राहक। फिर भी वह ऐसी बातें कहता था जो दूसरों को खुश और भौंचक्का कर देतीं। किन्तु यह प्रायः अध्ययन, अभ्यास और चतुर अटकलबाजी का परिणाम होता था। अलबत्ता किसी भी अन्य इंसान की तरह वह भी ईमानदारी से मेहनत करता था और उसकी कमाई भी खरे पसीने की कमाई थी।

उसने बगैर किसी योजना के ही गांव छोड़ दिया था। यदि वह वहां रहता तो अपना खानदानी काम जारी रखता – यानी खेत जोतना, जीना, शादी करना, और अपने मक्का के खेत और पुश्तैनी घर में बुढ़ाना। किन्तु ऐसा न हो सका। उसने बगैर किसी को बताए घर छोड़ दिया था और

तब तक पीछे मुड़कर नहीं देखा था जब तक कि वह घर से अच्छा-खासा दो सौ मील दूर न आ गया। एक गांववासी के लिए तो यह बहुत बड़ी दूरी थी जैसे कोई समंदर पार आ जाए।

उसके पास मानव-जाति की दिक्कतों यानी विवाह, धन और मानव संबंधों की उलझनों का एक कामकाजी विश्लेषण था। लंबे समय के अभ्यास ने उसकी अनुभूतियों को पैना बना दिया था। पांच मिनट में वह समझ जाता था कि गड़बड़ क्या है। वह एक प्रश्न के तीन पैसे लेता था और तब तक मुंह नहीं खोलता था जब तक कि सामने वाला कम-से-कम दस मिनट बोल न चुके। इससे उसे दसियों जवाबों और सलाहों का सुराग मिल जाता था। जब वह सामने बैठे व्यक्ति से कहता कि 'तुम्हें अपनी मेहनत का पूरा फल नहीं मिल रहा है', तो दस में से नौ व्यक्ति सहमत ही होते थे। या वह पूछता, "क्या तुम्हारे परिवार में कोई औरत है, चाहे दूर के रिश्ते में, जो तुमसे बैर रखती हो?" या फिर उस व्यक्ति के स्वभाव का विश्लेषण पेश कर देता, "तुम्हारी अधिकतर परेशानियां तो तुम्हारे ही स्वभाव के कारण हैं। और तुम्हारा शनि जहां बैठा है, उसके चलते तुम्हारा स्वभाव इससे अलग हो भी कैसे सकता है? तुम्हारा स्वभाव तेज है और बाहर से तुम बहुत रूखे हो।" यह बोलकर वह अपने ग्राहकों का दिल जीत लेता था क्योंकि कोई कितना भी नरमदिल क्यों न हो, उसे यह सुनना अच्छा लगता है कि उसका बाह्य रूप डराने वाला है।

मूंगफली वाले ने अपनी ढिबरी बुझाई और घर जाने को उठ खड़ा हुआ। कहीं से हरी रोशनी का एक कतरा ज्योतिषी के सामने की ज़मीन पर पड़ा। वह अपनी कौड़ियां और अन्य तामझाम उठाकर अपने झोले में रख ही रहा था कि यह हरी रोशनी चमकी। उसने सिर उठाकर देखा कि उसके सामने एक आदमी खड़ा है। उसने ताड़ लिया कि वह कोई ग्राहक है और कहा, "तुम बहुत परेशान दिखते हो। अच्छा होगा यदि तुम थोड़ी देर बैठकर मुझसे बातचीत कर लो।" वह आदमी जवाब में कुछ अस्पष्ट-सा बुदबुदाया। ज्योतिषी ने थोड़ा आग्रह किया तो उस व्यक्ति ने अपना हाथ उसकी नाक के नीचे फैलाते हुए कहा, "तुम खुद को बड़ा ज्योतिषी समझते हो?" ज्योतिषी को लगा कि यह एक चुनौती है। उसने हरी रोशनी की तरफ अपनी हथेली घुमाते हुए कहा, "तुम्हारा स्वभाव ही ऐसा है?" उस आदमी ने कहा, "बकवास मत करो। कुछ काम की बात बताओ।" हमारा ज्योतिषी मित्र थोड़ा चिढ़ गया, "मैं एक सवाल के सिर्फ तीन पैसे लेता हूं और जवाब ऐसा होगा कि तुम्हारे पैसे वसूल हो जाएं।" यह सुनकर उस

आदमी ने अपना हाथ खींचा और एक आना निकालकर उसकी ओर उछाल कर बोला, "मुझे कुछ सवाल पूछना है। यदि मैंने साबित कर दिया कि तुम झांसा दे रहे हो तो तुम यह एक आना ब्याज समेत लौटाओगे।" "और यदि तुम्हें मेरे जवाब संतोषजनक लगे, तो क्या तुम मुझे पांच रुपए दोगे?" "नहीं।" "तो क्या आठ आने दोगे?" "ठीक है, मगर शर्त यह रहेगी कि यदि तुम्हारे जवाब गलत निकले तो तुम मुझे दुगना पैसा दोगे।" अजनबी ने कहा।

थोड़ी हुज्जत के बाद यह सौदा तय हो गया। ज्योतिषी जब मन ही मन भगवान से प्रार्थना कर रहा था तभी अजनबी ने बीड़ी सुलगाई। माचिस की रोशनी में ज्योतिषी को उसके चेहरे की एक झलक मिल गई। सड़क पर भागती कारों के भोंपुओं, अपने घोड़ों पर गालियां सन्नाते तांगे वालों और चहलकदमी करते लोगों की बातचीत के शोरगुल के बीच एक ठहराव-सा आ गया। अजनबी बैठ गया, अपनी बीड़ी के कश खींचकर धुआं छोड़ते हुए काफी निर्दयतापूर्वक बैठ गया। ज्योतिषी काफी बेचैन हो उठा। उसने कहा, "ये लो तुम्हारा एक आना वापस। मैं ऐसी चुनौतियों का आदी नहीं हूं। वैसे भी मुझे देर हो रही है. . ।" यह कहते हुए उसने सामान बांधने की तैयारी शुरू कर दी। मगर अजनबी ने उसकी कलाई पकड़ कर कहा, "अब तुम बच नहीं सकते। मैं तो यहां से

गुज़र रहा था, तुमने ही मुझे रोक लिया था।" उसकी पकड़ में ज्योतिषी कांपने लगा। उसकी आवाज़ कमज़ोर पड़ गई, "आज मुझे छोड़ दो। मैं तुमसे कल बात करूंगा। मगर अजनबी ने अपनी हथेली उसके सामने फैलाकर कहा, "चुनौती तो चुनौती है, चलो बताओ।" ज्योतिषी का मुंह सूखने लगा, उसने कहना शुरू किया, "एक औरत है. . . ।"

अजनबी ने कहा, "चुप रहो। मैं यह नहीं सुनना चाहता। क्या मैं अपनी तलाश में सफल रहूंगा? इस सवाल का जवाब दो और जाओ। वरना मैं तुम्हें तब तक नहीं जाने दूंगा जब तक कि तुम अपना सारा पैसा मुझे नहीं दे देते।" ज्योतिषी ने कुछ मंत्र वगैरह पढ़े और हिम्मत जुटाकर बोला, "ठीक है। मैं बताता हूं। पर यदि मेरी बात तुम्हें ठीक लगी तो क्या तुम मुझे एक रुपया दोगे? वरना मैं मुंह नहीं खोलूंगा, तुम जो चाहे करना।" काफी हीले-हवाले के बाद अजनबी मान गया। ज्योतिषी ने कहा, "तुम्हें एक बार मरा जानकर छोड़ दिया गया था। क्या मैं सही कह रहा हूं?"

"आह, और बताओ।"

"एक बार तुम्हें चाकू लगा था।", ज्योतिषी ने कहा।

"ठीक बताया", अजनबी ने सीने पर निशान दिखाते हुए कहा, "आगे?"

"और फिर तुम्हें पास के खेत के कुएं में फेंक दिया गया था। तुम्हें मरा जानकर छोड़ दिया गया था।"

"यदि वहां से गुज़रते कुछ लोगों ने संयोग से उस कुएं में न झांका होता, तो मैं तो मर ही गया होता।" अजनबी ने आश्चर्य और उत्साह से बताया।

फिर उसने मुट्ठी भींचते हुए पूछा, "मैं उसे खोजने कहां जाऊं?"

"दूसरी दुनिया में", ज्योतिषी ने जवाब दिया, "वह तो एक दूर के शहर में चार महीने पहले मर गया। अब वह तुम्हें कभी नहीं दिखेगा।" यह सुनकर अजनबी गुर्राया। ज्योतिषी ने अपनी बात जारी रखी, "गुरू नायक . . . ", उसने पुकारा।

"तुम मेरा नाम जानते हो?" अजनबी हक्का-बक्का था।

"मैं तो बाकी सारी बातें भी जानता हूं, गुरू नायक। अब मेरी बात ध्यान से सुनो। इस शहर से तुम्हारा गांव उत्तर दिशा में दो दिन चलने पर आता है। अगली गाड़ी लेकर लौट जाओ। यदि तुम घर से बाहर रुके तो मैं देख रहा हूं कि तुम्हारी जान को फिर एक बार खतरा है।" उसने चुटकी भर भभूत निकालकर अजनबी की ओर बढ़ाई। "इसे अपने सिर पर लगाकर घर लौट जाओ। फिर कभी दक्षिण की ओर यात्रा न करना। शतायु भव।"

"मैं फिर से घर क्यों छोड़ूंगा?" सोचते हुए अजनबी ने कहा। "मैं तो कभी-कभार घर से निकलता था ताकि उसे खोजकर उसका गला घोंटकर खत्म कर दूं।" उसने निराश होकर कहा, "वह मेरे हाथ से बच निकला था। मुझे उम्मीद है कि वह बुरी मौत मरा होगा।"

"हां", ज्योतिषी ने कहा, "वह एक बस के नीचे कुचला गया था।" यह सुनकर अजनबी के चेहरे पर संतुष्टि के भाव आ गए।

जब ज्योतिषी ने अपना तामझाम समेटकर झोले में रखा तब तक वह जगह पूरी तरह निर्जन हो चुकी थी। हरी रोशनी भी गुल हो गई थी और चारों ओर घुप्प अंधेरा और खामोशी थी। मुट्ठी भर सिक्के ज्योतिषी को देकर अजनबी भी रात के अंधेरे में गुम हो गया था।

ज्योतिषी लगभग आधी रात गए घर पहुंचा। उसकी पत्नी दरवाज़े पर ही राह देख रही थी। उसने देरी का कारण पूछा। ज्योतिषी ने सारे सिक्के उसकी तरफ उछालते हुए कहा, "गिनो इन्हें। एक आदमी ने दिए हैं।"

पत्नी ने सिक्के गिनकर कहा, "साढ़े बारह आने।" वह बहुत खुश थी। "मैं कल थोड़ा गुड़ और नारियल खरीद पाऊंगी। बच्ची कितने दिनों से मिठाई मांग रही है। कल मैं उसके लिए अच्छी-सी चीज़ बनाऊंगी।"

"सुअर के बच्चे ने मुझे ठग लिया। उसने एक रुपए का वादा किया था।" ज्योतिषी बोल उठा।

पत्नी ने उसकी ओर देखा और पूछा, "क्या हुआ? तुम परेशान क्यों हो?"

"कुछ नहीं।"

खाना खाने के बाद चारपाई पर बैठकर उसने पत्नी को बताया, "जानती हो, आज मेरे सिर से एक बड़ा बोझ उतर गया। इतने साल मैं सोचता रहा कि मेरे हाथ एक आदमी के खून से सने हैं। इसीलिए मैं घर से भाग गया था। भागकर यहां आ गया और तुमसे विवाह किया। वह आदमी ज़िन्दा है।"

वह सकते में थी, "तुमने हत्या की कोशिश की थी?"

"हां, गांव में, जब मैं एक नादान छोकरा था। एक दिन हमने शराब पी, जुआ खेला और बुरी तरह झगड़ने लगे। पर अब इस बारे में क्यों सोचें? चलो, सोने का वक्त हो गया।" जम्हाई लेते हुए उसने कहा और चारपाई पर पसर गया।

आर. के. नारायण: (1906–2001) मालगुडी डेज़, स्वामी एंड हिज़ फ्रैंड्स जैसी कहानियां लिखकर आर. के. नारायण ने भारतीय अंग्रेज़ी साहित्य को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान दिलवाई। उनके एक उपन्यास 'गाइड' को साहित्य अकादमी पुरस्कार भी प्राप्त हुआ था जिस पर फिल्म भी बनी थी। मई 2001 में उनका देहांत हुआ।

अनुवाद: सुशील जोशी: एकलव्य के होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम से जुड़े हैं। इसके अलावा स्वतंत्र रूप से विज्ञान लेखन एवं अनुवाद भी करते हैं।

चित्र: विप्लव शशि: बड़ौदा में चित्रकला की पढ़ाई कर रहे हैं।

सवालीराम ने पूछा है सवाल:

मनुष्यों के बालों का रंग सफेद क्यों हो जाता है? बालों के विषय में कुछ जानकारी दीजिए।

– शिल्पा, कृतिका और योगेश
कक्षा सातवीं, होशंगाबाद

यदि आपके पास इस सवाल का जवाब है तो हमारे पास जल्द-से-जल्द भेजिए।

हमारा पता:

संदर्भ
एकलव्य, कोठी बाज़ार, होशंगाबाद
म. प्र. पिन: 461001

आडवर्कः भालू भी, खीरा भी

किशार पवार

छोटे जीवों मसलन कीट-पतंगों और पक्षियों में तो ढेरों सहयोगी संबंध मिलते हैं। विशेषकर परागण और परागण की क्रिया के फलस्वरूप बने बीजों के बिखराव और अंकुरण में। परन्तु पौधे और स्तनधारी के बीच ऐसे रिश्ते कम ही देखने को मिलते हैं। परन्तु जो हैं, वे बड़े मज़ेदार हैं। जैसे एक भालू का, खीरे के पौधे के साथ। दोनों जीव कई मायने में बड़े विचित्र हैं। रंग, रूप और व्यवहार सभी में अत्यन्त भिन्न। आइए देखें, कैसे?

पहले भालू की चर्चा करते हैं। इसका नाम है आडवर्क बीयर या चींटीखोर भालू। वैज्ञानिक इसे ओरिक्टेरोपस अफर कहते हैं। अफ्रीका में इसे अर्थपिग कहा जाता है क्योंकि यह देखने में थोड़ा बहुत सुअर जैसा दिखता है और अपने शक्तिशाली पंजों से दीमक की बांबी खोदकर चींटियों और दीमकों का भक्षण करता है। इसके पंजे कहीं-कहीं 'सौभाग्य के प्रतीक' के रूप में घरों में रखे जाते थे।

दक्षिणी अफ्रीका के रेगिस्तानी प्रदेशों के खुले क्षेत्रों में पाए ज़ाने वाला यह प्राणी शर्मीला निशाचर है। इसका शरीर भूरे पीले बालों से ढंका रहता है। यह लगभग 150 से. मी. लंबा व 60 से. मी. लंबी पूंछ का मालिक है। सिर संकरा, स्नाउट लंबा, वज़न लगभग 45 से 77 किलो के आसपास। कान खरगोश जैसे लंबे, अतः सुनने में पक्का है। ज़रा-सी आहट भी खूब पहचानता है। अपनी छोटी-छोटी मज़बूत जालीदार टांगों और लंबे पंजे से अपनी मांद खोदता है। उन्हीं से चींटी और दीमक के घरोंदे भी, जो इसका प्रमुख भोजन है।

अपनी लंबी चिपचिपी जीभ से इधर-उधर भागती दीमकों को फटाफट चट कर जाता है। यह वर्षा वनों से लेकर सूखे सवाना तक उन सभी जगहों पर रहता है जहां दीमकों की बांबियां पाई जाती हों। इसकी दृष्टि कमज़ोर है परन्तु अन्य संवेदी अंग, मसलन श्रव्य

और घ्राण अत्यन्त प्रभावी हैं। इस विचित्र सुअरनुमा भालू के कान हमेशा खड़े रहते हैं। इसके नासिका छिद्र शिकार की गंध को दूर से ही पकड़ लेते हैं। नाक के छिद्र घने बालों से ढंके रहते हैं, जो खोदते समय नाक को बंद रखते हैं।

मादा अक्टूबर-नवंबर में 7 महीनों के पश्चात एक-दो बच्चों को जन्म देती है। बंदी अवस्था में ये 10 वर्षों तक जीवित रहते हैं।

अब आते हैं इस रिश्ते के दूसरे पात्र पर, जो खीरा जाति का एक पौधा है। नाम है आडवर्क कुकुम्बर (कुकुमिस ह्यूमिफ्रक्टस) जो पूरे कुल का एक मात्र ऐसा पौधा है जिसके फल ज़मीन के ऊपर नहीं, बल्कि ज़मीन के अंदर लगते हैं। इसके मादा फूल निषेचन के पश्चात गुरुत्व के प्रति संवेदी हो जाते हैं और ज़मीन में 15 से 30 से.मी. तक अंदर घुस जाते हैं। फलों का आगे का विकास ज़मीन के अंदर ही होता है। अर्थात इसका फल मूंगफली की तरह ज़मीन में पाया जाता है, परन्तु उससे कहीं बहुत बड़ा और रसीला।

रेगिस्तान में आडवर्क भालू इसके ज़मीनी फलों को अपनी प्यास बुझाने के लिए खोदकर खाता है। उल्लेखनीय है कि खरबूज हो, तरबूज या खीरा-ककड़ी, सभी में मुख्य रूप से पानी ही होता है। खीरा खाने के बाद कुछ बीज इसकी आंतों से विष्ठा के साथ साबुत बाहर निकल आते हैं। यह सावधानी-पूर्वक विष्ठा विसर्जन के पश्चात बाकायदा ढीली-ढाली मिट्टी से उसे ढंकता भी है। भालू का यह व्यवहार खीरे के बीजों के लिए एक नर्सरी का काम करता है, जहां नए पौधे अंकुरित होते हैं। भालू और खीरा के बीच बना यह संबंध एक तरह का सहजीवी रिश्ता है। इससे खीरे का फैलाव और भालू को उसके क्षेत्र में ज़रूरत पड़ने पर पौधे की उपलब्धता, दोनों सुनिश्चित हो जाते हैं।

क्या भालू से यहां कुछ सीखने की गुंजाइश नहीं है कि जिन प्राकृतिक संसाधनों का हम उपभोग करते हैं, उनकी सुरक्षा और फैलाव की चिंता/व्यवस्था भी करनी चाहिए। उल्लेखनीय है कि स्थानीय आदिवासी इस खीरे को आडवर्क कुकम्बर के नाम से पुकारते हैं। ज़ाहिर है, वे इस आपसी रिश्ते से वाकिफ हैं।

किशोर पवार: इंदौर के होल्कर साइंस कॉलेज में वनस्पति विज्ञान पढ़ाते हैं।

12740